|| श्रीकनकभवन विहारिणी विहारिणौ विजयेते ||

—: श्री :—

सिद्धान्त-मुक्तावली

रचयिता :—

रसिकाचार्य रत्न श्रीजनकराजकिशोरीशरणजी महाराज

उपनाम- श्रीरसिकअलिजी

टीकाकार :—

शत्रुहन शरण

-।। श्रीजानकीवल्लभो विजयतेतराम् ।।-

अनन्त श्रीसद्‌गुरु चरणकमलेभ्यो नमः ।

श्रीजानकीवल्लभो विजयते ।

अनन्त श्रीपूर्वाचार्येभ्यः नमः ।

श्रीमत्यै सर्वेश्वर्य्यै चारुशीलायै नमः ।

श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः ।

भगवते श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।

श्रीमते अग्रदेवाचार्याय नमः ।

श्रीमिथिला कमलादिव्याभ्यां नमः ।

श्रीअवध सरयू दिव्याभ्यां नमः ।

श्रीसिद्धान्त-मुक्तावली

रचयिता :—

रसिकाचार्य रत्न श्री स्वामी जनकराज किशोरीशरणजी
महाराज, श्रीरसिकअलिजी

प्रकाशक :—

श्रीकिशोरीशरणजी, मधुकर ।

श्रीअग्रभवन-स्वर्गद्वार, श्रीअयोध्याजी ।

यहाँसे यह पुस्तक प्राप्य भी रहेगी ।

प्रथम संस्करण ५००] १९८४ [निछावर ७)

❀ श्रीमन्मारुतनन्दाय नमः ❀

—: भूमिका :—

प्रस्तुत श्रीसिद्धान्त-मुक्तावली ग्रन्थोत्तमके लब्धप्रतिष्ठ सुलेखक हैं, मधुररसके विशिष्टआचार्य, वन्द्यपादाम्बुज श्रीरसिक-अलिजी। मधुरउपासनाके साधकोंकेलिये परमोपादेय एवं आचरणीय सिद्धान्तोंका यहाँ संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित विवेचन है। इस रसके साधकोंका साध्य होता है, नित्यकनकमहलटहलकी प्राप्ति एवं साधन होता है, रसिकगुरु उपदिष्ट भजन-भावना। प्रारम्भिक रसिक साधककी भजन-भावनाको अनुशासित करके, उसे सुव्यवस्थित रीतिसे सीधे लक्ष्यकी ओर गतिमान करानेका काम है, रसिकाचार्य निरूपित रससिद्धान्तोंका। अतः सिद्धान्तों की आवश्यकता अपनी जगहपर अपरिहार्य है।

श्रीसिद्धान्त-मुक्तावलीके पूर्वभागमें रसोपासना जिज्ञासु को उपदेश दिया गया है कि वह सुयोग्य सद्गुरु खोजकर, उनसे पञ्चसंस्कारपूर्वक मन्त्रदीक्षा प्राप्त करें। तत्पश्चात् सभी संस्कारोंको सदैव धारणपूर्वक उपदिष्ट श्रीयुगल मन्त्रराजका सविधि जप करे। अपने इष्टमेंही अनन्यभावसे अनुरक्त रहने के लिये आपके श्रीनामरूप लीलाधामके परत्वका सदैव मनन करता रहे।

उत्तरभागमें दीक्षित साधकको नित्यब्रह्मसम्बन्ध सद्गुरु द्वारा उद्बोधितकर, तदनुकूल अपना कर्त्तव्य पालनपर जोर दिया

गया है। यथार्थ शरणागति एवं सर्वप्रकारसे आत्मसमर्पण बनता है श्रीमधुर रसके साधकोंकेही द्वारा। अतः शरणागति धर्मका अवलम्बनकर उसे परिपुष्ट बनानेकेलिये अपने सर्वसमर्थ इष्टके शरणागतोपयोगी गुणगणोंका चिन्तन आवश्यक बताया गया है।

उपासनाशब्दका अर्थ, अन्य उपासनाकी अपेक्षा श्रीसीता-रामोपासनाका वैशिष्ट बताकर, भक्ति तथा भक्ति अन्तर्गत प्रेम, स्नेह, प्रणय, अनुराग आदिके लक्षण बताये गये हैं।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर पाँचो भक्ति-रसोंके अंगोंका वर्णनकर, रसोंके पारस्परिक वैर, मैत्र्य एवं तटस्थ रसोंपर विचारकर ग्रन्थ समाप्त किया गया है।

जिन साधककी भजन-भावनासे समय निकालकर रहस्य ग्रन्थ पढ़नेका समय न मिलता हो, उनके लिये यह स्वल्पकाय ग्रन्थ बहुत उपयोगी होंगे। जिन्हें प्रातःस्मरणीय पूर्वाचार्योंकी महावाणीमें विशेष श्रद्धा हो तथा उनके स्वाध्यायके लिये अव-काश हो, उन्हें सिद्धान्त बिषयक सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ श्रीअनन्यचिंता-मणि परमरसिकाचार्य पूज्यपाद श्रीमत्कृपानिवास स्वामी द्वारा विरचित अवश्य पढ़ना चाहिये। इसमें अन्यान्य साधनोंकी अपेक्षा मधुर उपासनाका वैशिष्ट्य, रसिकेतर मतोंका खण्डन, पाँचो ब्रह्मसम्बन्धोंमें श्रृंगारभावकी श्रेष्टता बतायी गयी है। अनन्यरहस्य, युगल उपासना, शरणागति रहस्यका बिवेचन स्व-कीयादि भावोंपर विमर्श, मानरहस्य, रसांगोपर विचार, दिव्य धाममें सपरिकर युगलकिशोरकी झाँकी वर्णनपूर्वक ग्रन्थ समाप्त

किया गया है । एक और परमोत्कृष्ट सिद्धान्त ग्रन्थ है, प्रातः स्मरणीय विशिष्ट रसिकाचार्य श्रीबाल अलिजी द्वारा विरचित सिद्धान्त तत्व दीपिका ।

इसमें वर्णन है—श्रीप्रभावतीनाम्नी विशुद्धस्वरूपा जीवा-शक्तिका माया परवश पतन । अनेक योनियोंमें भ्रमणकर अंत में सुमुखीनामक राजकन्या रूपमें अवतरित हुई। प्रभुप्रेरित उसे कृपावती नामक सद्गुरुकी प्राप्ति हुई । उनसे पञ्चसंस्कारपूर्वक मन्त्रदीक्षा ग्रहण, उनसे उपासना की सांगोपांग विधि जानकर, सविधि साधन करके अन्तमें दिव्यमहलवासकी प्राप्ति की । उसी की जीवनीके व्याजसे सभी आवश्यक सिद्धान्तोंका वर्णन विशद रूपसे यहाँ आपको मिलेगा ।

इन पंक्तियोंका तुच्छ लेखक कोई विद्वान् तो है नहीं। देववाणी संस्कृत भाषासे कोरा अनभिज्ञ । विशिष्ट साम्प्रदायिक ग्रन्थोंकी राशि तो है संस्कृत वाङ्मय । ऐसा अनजान किसी निगूढ़ ग्रन्थकी टीका क्या करेगा ? थोड़ा बहुत प्रवेश है तो पूर्वरसिकाचार्योंकी हिन्दी भाषाकी महावाणियोंमें । वहीतो जीवन सम्बल हैं। उन्हींके प्रकाशमें इसने प्रस्तुतग्रन्थोंके अर्थोंपर विचार किया है । भूलोंकी भरमार सहज सम्भव है, मूलग्रन्थ अल-बत्त ! परमोत्कृष्ट हैं। वही साधकोंके साधन पथको आलोकित करेंगे । पुष्पके साथ पुष्पकीटभी देवमस्तकपर पहुँच जाता है।

इसके पहले पं० अवधकिशोरदासजी महाराज इसपर टीका कर चुके हैं। आप साम्प्रदायिक ग्रन्थ लेखकोंमें महारथी हैं । आपकी टीका सब प्रकारसे प्रशंसनीय है ।

जिन उदार सज्जनोंके आर्थिक सहयोगसे प्रस्तुत सटीक ग्रन्थका प्रकाशन संभव बना है, उनके श्लाघ्य नाम सधन्यवाद लिखे जाते हैं—

१– योगिराज श्रीभगवतदासजीमहाराज, सरवारनगर (म०प्र०)।

२– श्रीसीताशरण गुप्त, समथर जिला–झाँसी ।

३– श्रीसियारामशरण गुप्त, चिरगाँव ।

श्रीलाडलीलालशरण, अग्रभवन–स्वर्गद्वार, श्रीअयोध्याका सहयोग भी कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हैं ।

–॥ भूल सुधार ॥–

पृ० ६७में आये हुये दोहा ५८के अर्थ करते समय मैंने वारांगनाओंका नृत्य राजसभामेंही संभव बताया है, परन्तु पीछे पतालगा कि वारांगनाओंका नृत्यतख्त ५/६ फीट ऊँचा पहियादार संचल होता है। हाथीपर राजसवारीके आगे-आगे चलनेवाले उसी तख्तपर वह नर्तकी अपने वहीं बैठे हुये वादक गायक–समाजके साथ नृत्य करती जाती है। विदूषक भी आगे-आगे स्वांगपूर्वक प्रहसनचेष्टा करते चलते हैं ।

श्रीरसमोदकुञ्ज, श्रीअयोध्याजी भादो शुक्ला एकादशी सं० १६४१ वि०	रसिकसज्जनों लघु अनुचर शत्रुहन शरण

—: सूची-पत्र :—

पूर्व भागः—

क्रमांक	विषय	पृष्टाङ्क
१—	ग्रन्थ नामार्थ	१
२—	मङ्गलाचरण	,,
३—	साधकका प्रारम्भिक कर्त्तव्य	२
४—	सद्गुरु अन्वेषणमें संभाव्य भ्रम	३
५—	श्रीरामभक्त लक्षण	५
६—	गुरुनिष्ठा	७
७—	पंच संस्कारका नित्य सम्हार	१२
८—	श्रीमंत्रराज विनियोग	१८
९—	ऋष्यादि न्यास	,,
१०—	करन्यास, हृदयादि न्यास	१९
११—	दिग्वन्धन, वर्णन्यास, पदन्यास	२०
१२—	मंत्रन्यास, समर्पण	२१
१३—	रसिक संग	२४
१४—	निर्गुणमतवादीका संग त्याज्य	३१
१५—	अनन्यता सापेक्ष राम-भक्ति	३६
१६—	श्रीसियावल्लभ ऐश्वर्य	४५
१७—	श्रीरामनाम महत्त्व	५४
१८—	श्रीजानकीजीवनजूकी राजमाधुरी	६२
१९—	श्रीसियावरजूका रूपोत्कर्ष	७१
२०—	श्रीरामलीला परत्व	८०

क्रमांक	विषय	पृष्टाङ्क

क्रमांक	विषय	पृष्टाङ्क
४१-	आर्जव	१३२
४२-	गुण उपसंहार	१३३
४३-	उपासना प्रसंग	१३४
४४-	भक्ति	१४०
४५-	श्रद्धादि लक्षण	१४२
४६-	विश्वास लक्षण, निष्ठा लक्षण	१४३
४७-	भाव भक्ति लक्षण	१४५
४८-	प्रेमादि लक्षण	१४७
४९-	स्नेहलक्षण	१४८
५०-	अनुराग लक्षण	१४९
५१-	प्रणयलक्षण	१५०
५२-	ऐश्वर्यांशया माधुर्यांशया उपासना	"
५३-	साङ्ग भक्तिरस निरूपण	१५४
५४-	शान्तरसके अङ्ग	१६०
५५-	दास्यभावके रसाङ्ग	१६५
५६-	सख्यरतिके रसांग	१७१
५७-	वात्सल्यरसके अंग	१७७
५८-	शृङ्गाररस	१८०
५९-	रसवैरी मित्रता वर्णन	१८४
६०-	रसाभास विमर्श	१८५
६१-	सर्वरसाश्रय रघुनन्दन	१८७
६२-	फलश्रुति	१८९
६३-	पुष्पिका	१९०

❀ श्रीकनकभवन विहारिणी विहारिणौ विजयेतेतराम् ❀

❀ श्री मन्मारुतनन्दनाय नमः ❀

श्री सिद्धान्त मुक्तावली

ग्रन्थ नामार्थः—सिद्धान्त कहते हैं भलीभाँति सोच-विचारकर स्थिर किये गये मत को। मुक्तावली कहिये मोतीमाला को। ग्रन्थोक्त सुहृद सम्मित सिद्धान्त को आचरण में उतारने के लिये जो अपने हृदय में धारण करेंगे, उनके हृदय शीतल सुशोभित होंगे तथा मूल्यवान् होने के कारण आगे मौके पर काम आयेंगे। अतः सिद्धान्त पर मुक्तावली का धर्म आरोपित किया जाना अत्यन्त युक्तियुक्त है।

मङ्गलाचरण, दोहा

निज गुरु पदरज वंदिपुनि, सुमिरि पवनसुत पाय।
करि सिद्धान्त मुक्तावली, गति अनन्यदरसाय ॥१॥

शब्दार्थ :—निजगुरु=अपने सद्‌गुरु भगवान् के। पदरज=चरणधूलि। पाय=चरणकमल। करि=(अवधीभाषा के व्याकरण से रचना) करता हूँ। गति=(साधन) मार्ग। दरसाय=दिखाने के लिए।

भावार्थ :—ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के निमित्त शिष्ट परम्परा के अनुरूप पूज्य ग्रन्थकर्त्ता भी ग्रन्थारंभ के एक ही दोहे में वन्दनात्मक, स्मरणात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण करते हैं।

अपने सद्गुरु भगवान् के मंगलमय पद कमल पराग की वन्दना करता हूँ। "वन्दौं गुरुपद पदुम परागा।" 'गुरुपद धूरी तो सजीवन की मूरी है। गुरुपद रेनु तो हमारे कामधेनु हैं, आदि शीर्षक कई कवित्त श्रीसद्गुरु भावादर्श ग्रन्थ के इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं।

तत्पश्चात् परमगुरु श्रीहनुमत्लालजी के चरणकमल का स्मरण करते हैं। "मंगल मूरति मारुत नन्दन। सकल अमंगल मूल निकंदन ॥" श्री सिद्धान्त मुक्तावली नामक ग्रन्थ की रचना इस अभिप्राय से करते हैं कि इस ग्रन्थ के द्वारा अपने इष्ट में अनन्य निष्ठा रखने वाले साधकों के लिये सरल सुगम अचूक मार्ग भलीभाँति देखने में आ जाय।

साधक का प्रारम्भिक कर्तव्य

जगद दुखद जिय जानिकै, त्यागे जग व्यवहार।
राम मिलन हित खोजहीं, सो पुनि संत उदार ॥२॥

शब्दार्थ:—जगद् = नाना योनियों में भ्रमण करनेके चक्कर में डाल देने वाला। दुखद = दुःख देने वाला। व्यवहार = लेने

देने का बरताव। संत=वीतराग महात्मा। उदार=दयालुता-पूर्वक परमार्थ बाँटने वाले।

भावार्थः—संसार के सगे सम्बन्धी स्वार्थ के साथी कहे जाते हैं। इनका लौकिक हित आप कीजिये तो ये भी आपका लोककार्य कर दें। यह तो बनिये का सा व्यवहार है। परन्तु जगत सम्बन्ध के अनुरूप प्रभु प्रदत्त कर्तव्य भार को निस्स्वार्थ भाव से करना, अन्तःकरण संशोधक निष्काम कर्मयोग है। "यहि कर फल पुनि विषम विरागा। तब ममधर्म उपज अनुरागा॥" सोव्यवहार वाले लौकिक कार्य तो नाना योनियों में भ्रमाने वाले एवं परिणाम में दुःख देने वाले हैं। ऐसा मनमें जानकर उन्हें शीघ्र छोड़ ही देना उचित है। इस प्रकार जगत प्रपंच से छूट कर आनन्द सिन्धु सुखदायक रघुनाथ से मिलाने में माध्यम बनने वाले आचार्य कोटि मत मायायुक्त उदार संत को खोजना चाहिये।

सदगुरु अन्वेषण में संभाव्य भ्रम से बचिये।

कलि पाखंडी वेष बहु, लोभे नहिं तेहि देखि।
इनमें हरिजू ना मिलैं, वैष्णव में हरि लेखि॥३॥

शब्दार्थः—पाखंडी=पा शब्द से कर्म, ज्ञान, उपासना-तीनों वैदिक धर्मों का पालन करना कहाता है। इनके खंडन करने वाले पाखंडी हुए।

"पालनाच्च त्रयीधर्मः 'प' शब्देन निगद्यते।
तं खण्डयन्ति ते यस्मात् पाखण्डास्तेन हेतुना॥"

चार्वक मतानुयायी नास्तिक, वाममार्गी, बौद्ध जैन तथा आधुनिक पंथाई वर्ग सभी पाखंडी हैं "श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ, संयुत बिरति विवेक। बे न चलहिं नर मोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक॥"

भावार्थः—कलियुग वंचक है। इस समय बहुत से पैसे कमाने वाले भड़कीले आकर्षक साधुवेष धारण कर जहाँ तहाँ घूम रहे हैं। इनके सुवेष देखकर ललचाकर उनके पंजे में न पड़ना चाहिये। "तुलसी देखि सुवेष भूलहिं मूढ़ न चतुर नर। ज्यों जग केकी पेख, बचन सुधा सम असन अहि॥" इन पाखंडियों के मध्य में सर्व व्यापक निर्गुण ब्रह्म भले व्याप्त रहें, परन्तु हरि शब्द वाच्य सगुण साकार ब्रह्म तो वहाँ मिलेंगे नहीं। वे तो अपने वैष्णव भक्तों के साथ रहते हैं। मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।' "अहं भक्त पराधीनः"

वैष्णव तें सौगुन अधिक, रामभक्त जिय जानि।
जिनके सरनागति मिलैं, रामसिया दृढ़ मानि॥४॥

शब्दार्थः—भगवान् विट्ठलदास, श्री लक्ष्मीनारायण, श्री-नृसिंह भगवान् तथा भगवान् श्री राधारमण आदि सगुण ब्रह्म के सभी उपासक वैष्णव कहाते हैं। सभी वैष्णव अपनी अपनी जगह पर बहुत ही ठीक हैं। परन्तु श्री रामभक्त की तो बात ही और है:—"सबते सो दुरलभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥"

सभी वेद सगुण ब्रह्म के बहुत से अवतारों का भली-

भाँति वर्णन करते हैं। अपने अपने भक्तों के लिये इनके भूतल पर अवतार होते हैं। हजारों जन्मों तक कोई वैष्णव इन अवतारों की आराधना करे, तो अन्त में वह श्री जानकीकान्तजू का भक्त बनता है।

"सम्यग्वदन्ति निगमा बहुशोऽवतारान्
सद्ब्रह्मणो भुवितले निज भक्त हेतोः।
यस्तान्नमेदनुदिनं च सहस्र जन्म
रामस्य चैव हि तदा समुपासकस्सः॥

—श्री मन्महारामायण ४६। ५

इस प्रकार के विशुद्ध रामभक्त संत के शरणापन्न होने पर श्री दिव्य दंपति श्री सीतारामजी अवश्य मिलेंगे, ऐसा दृढ़ निश्चय मानें॥

श्री राम भक्त लक्षण

तिलक मधुर माला युगल, भुज अंकित धनु बान।
रामसिया युत नाम निज, रामभक्त तेहि जान॥५॥

शब्दार्थः—मधुर=पतली लकीर। मधुरमाला युगल= छोटी छोटी मणियों की दो लड़ वाली कंठी। अंकित=तप्त छाप युक्त।

भावार्थः—१ ललाट पर पतली लकीर वाले ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक हों। २—कंठ में सटी दो लड़ की तुलसी की मधुर

मनियों वाली माला हो। ३-भुजाओं पर श्री धनुषबाण की तप्त छाप हो। ४-श्री सियाजू, श्री राघवजू, या दोनों के संयुक्त नाम के साथ शरणान्त या दासान्त अपना नाम होते हों तथा उपलक्षण से पाँचवाँ संस्कार युगलमंत्र जापक हो, उन्हें श्री रामभक्त जानना चाहिये।

द्वाराचार्य जगद्गुरु श्री दुन्दुराचार्य ने षोडश श्लोकों में श्री रामभक्त के लक्षण निरूपित किया है। विस्तारभय से उनमे से केवल दो ही श्लोक यहाँ प्रसंग वश उद्धृत किये जाते हैं।

संस्कार पञ्चकापन्ना आकारत्रय शालिनः।
रहस्यत्रय वेत्तारः श्रेष्ठा भक्ताश्च ते मताः ॥१२॥
अर्थपञ्चक तत्वज्ञा रामकैङ्कर्यकारकाः।
सदाचारता ये च श्रेष्ठा भक्ताश्च ते मताः ॥१३॥

अर्थात् ऊपर कहे गये पाँचो संस्कार प्राप्त हों। मन्त्रार्थ सूचक अकारत्रय जो हैं। १-अनन्यार्हशेषत्व, २-अनन्यार्ह भोग्यत्व, ३-अनन्य उपायत्व। उन्हें अपनी रहनि में उतारे हों। मन्त्रार्थ के तीनों रहस्यों के जानने वाले हों, उन्हें श्रेष्ठ भक्त मानना चाहिये।

अर्थपंचक के ज्ञाता हों, अपने इष्टदेव श्री जानकी-वल्लभजू की सेवा में तत्पर रहने वाले हों, आचार विचार टकसार के अनुवर्ती हो, उन्हें श्रेष्ठ रामभक्त मानना चाहिये।

श्री रामभक्त के लक्षणों पर विशेष विचार इसलिये किया गया कि साधक को गुरु निर्वाचन में धोखा न हो जाय।

गुरुनिष्ठा

रामभक्त को गुरु करै, उर धरि सब तेहि रीति।
निकट रहै सेवै सदा, पद पंकज अति प्रीति ॥६॥

प्रारम्भि साधक को चाहिये श्री सर्वप्रथम गुरु वरण करे। "गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई। जौं विरंचि शंकर सम होई ॥" श्री सीतारामजी की नित्य सेवा प्राप्त करने वाले को चाहिये कि गुरु बनावें तो श्रीरामभक्त को ही। योगी हो, सन्यासी हो, अन्य अवतार के उपासक हो, उन्हें अपने मत-वाला मार्ग तो देखा गया है। श्री सीताराम प्राप्ति मार्ग को बेचारे क्या जानें ! जो जिस मार्ग का पथिक होता है, वही अपने इष्ट मार्ग को जानता है। श्री रामभक्त से इतर संत से प्राप्त श्रीराम मंत्र ही क्यों न हो, आपको श्रीराम प्राप्ति न करा सकेंगे। क्योंकि उस श्री राममंत्र में उपयुक्त गुरुद्वारा प्राप्ति उपयोगी शक्ति पात नहीं संभव है।

कहावत है "गुरू करै जानकर, पानी पीवै छान कर।" जो साधक समझबूझकर योग्य गुरू नहीं चुनते, वह सुदुर्लभ रामतत्व नहीं प्राप्त कर सकेंगे।

"अपरीक्षको हि यः शिष्योनैति तत्वं सुदुर्लभम्।"

श्री विवेकसारचन्द्रिका के मतसे गुरु वही बने, जिसके प्रभाव से शिष्य सभी वेदवेद्य परात्पर ब्रह्म श्री जानकीवल्लभ लालजू के उपासनाविषयक परम ज्ञान समग्र रूप से जान ले।

"स वै गुरुर्यस्य गुरुप्रभावात्
प्रलेभिरे ज्ञानपरं हि शिष्याः ।
उपासनं सर्वं श्रुतिप्रणीतं
सीतापतेः सर्वं परात्परस्य ॥"

"सतगुरु ऐसो चाहिये, जा घट अनुभव ज्ञान ।
श्री निवास सो गुरु मिले, तौ रीझै भगवान ॥"

गुरु वरण करनेके पश्चात् शिष्य का कर्तव्य होता है कि उनकी भजनभावना रहनीकरणी सबोंके अनुकरण करने के लिये उन्हें हृदयमें धारण करे। यद्यपि श्री युगलकिशोर की प्राप्ति के अनेक साधन हैं, परन्तु शिष्यके लिये तो गुरुगृहीत मार्ग ही अधिक श्रेयस्कर है। तत्पश्चात शिष्यको चाहिये कि श्री सद्गुरु सानिध्य में रहे। नवजात शिशु को जैसे मातृगोद ही एकमात्र गति है, उसी भाँति नवीन शिष्यको श्री गुरु सामीप्य बास।

स्वरचित श्री गुरुमहिमा नामक ग्रन्थ में अनन्त श्रीस्वामी युगलानन्यशरणजी महाराज ने भी यही कहा है—
"सेवौ सदा समीप रहावो। श्रीसतगुरु आयसुहि गहावो ॥"
शिष्य के लिये यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि वह अति प्रीति पूर्वक श्रीसतगुरुपदपंकज की सेवा करे।

श्रीविवेकसारचन्द्रिका का कहना है कि श्रीरामचन्द्रमा-जी से अभेद मानकर जो श्री गुरुचरण की सेवा करता है, वह अन्यान्य साधन किये बिना ही एकमात्र गुरुसेवाप्रभाव से मरणोपरान्त दिव्य कनकमहल का वास पा लेगा।

मत्वात्वभेदं श्री रामाद्योहि सेवेद्गुरोः पदम्।
प्रस्थान सर्वमुल्लंघ्य स व्रजेत्कनकगृहम्।

कमसे कम साधन के प्रारम्भ में तो श्री गुरु सेवा अवश्य करले। तभी उसे श्रीजानकीकान्त में उत्तमा भक्ति प्राप्त हो सकेगी।

प्रथमं सेवयेच्छ्री मद् गुरोश्चरण पङ्कजम्।
ततः श्री मैथिली कान्ते जायते भक्तिरुत्तमा ॥
—श्रीविवेक सार चन्द्रिका ॥

गुरु प्रसाद भोजन करै, गुरु पादोदक पान।
गुरु आज्ञा नित अनुसरै, गुरु मूरति कर ध्यान ॥७॥

उपर्युक्त दोहे में चार साधन बताये गये।

१-पहला है सद्गुरु शीथ प्रसाद सेवन :—

श्री अमर रामायण की यह अमरवाणी सदा मान्य है कि जो गुरु शीथ भक्ति-भाव पूर्वक सेवन करते हैं, वह भीतर बाहर से पवित्र होकर जन्ममरण से रहित हो जाते हैं :—

"ये चाश्नन्ति गुरोच्छिष्टं भावेन भक्तितः सदा।
ते तु वाह्यन्तरं पूतास्तरन्ति भवसागरम् ॥

श्री गुरु महिमा की महाबाणी पढ़िये :—

श्रीसतगुरु प्रसाद कन पावै। अमित महामख फल प्रगटावै ॥
श्रीसतगुरु जूठन हित तरसै। तेहि तन रोम रोम रस बरसै ॥

२-श्रीसद्गुरु चरणामृत पान करना। श्रीगुरु गीता का आदेश है:—

गुरुपादोदकं सम्यक् संसारार्णव तारणम्।
अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारकम् ॥

श्रीविवेक सार चन्द्रिकाकी महाबाणी है कि मोह मल से मन को पवित्र बनाना चाहते हो तो श्रीगुरुचरण धोकर वह चरणोदक सदा पान करते रहो।

यदीच्छसि मनः पूतं कर्त्तुं मोहमलीमसम्।
प्रक्षाल्य गुरुपादाब्जं तज्जलं पिब सर्वदा ॥

३- श्री गुरु आदेश को शिरोधार्य पूर्वक पालन करे। श्रीगुरुगीता का आदेश है कि सद्गुरु उपासना करने वाले उन्हीं की आज्ञा की प्रतीक्षा में रहें। जिसने श्रीगुरु आज्ञा भंग कभी नहीं की, उसकी अवश्य मुक्ति होगी।

"नित्य गुरुमुपासीत तस्यैवाज्ञा प्रतीक्षकः।
आज्ञा भङ्गो न क्रियते तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥"

श्रीगुरु मूरति कर ध्यान:—श्रीगुरुमहिमा की महावाणी है—

नकल असल हो जात है, श्री सतगुरु पद ध्याय।
युगलानन्य शरन लखो, बहु थल विषम विहाय ॥

"ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः ।" जिसने श्री सद्गुरुमंगल विग्रह का ध्यान नहीं किया, उसके ध्यान पथ में श्री जानकीकान्तजू आने से रहे ।

अर्पै निज सियराम को, तन मन धन गुरु हाथ ।
गुरु आज्ञा नित अनुसरै, सेवा सिय रघुनाथ ॥८॥

अपने परमप्रियतम युगलकिशोर श्री मैथिलीरघुनन्दनजू को तन, मन, धन, सर्वस्व समर्पण करना है । कैसे करें ? अजी, श्री गुरु हरि में अभेद नहीं जानते ?

"हरेर्गुरोरैक्य रूपमिहलोके गुरुः स्वयम् ।
नाराधयति तं मूढ़ः कथं स प्राप्नुयाद्धरिम् ॥"

श्री विवेक सार चन्द्रिका के मत से हरिगुरु में अभेद है । इस लोक में स्वयं हरि ही गुरु रूप धारण किये हुये हैं । इन प्रत्यक्ष गुरुरूप हरि की आराधना नहीं करते, तो परलोक में हरि को कैसे पावोगे ? समझ में आई बात ? श्रीगुरुजी को सर्वस्व समर्पण करो, सर्वस्व ! जान लेना उन्हीं युगल लाल को समर्पित हो चुका ।

नवेली मैथिलीजू तथा नवेले अलबेले रघुलालजू को सेवाआर्चाविग्रह में राजसी ढंग से करनी चाहिये, भावना में मानसिक सेवा चलेगी । दोनों ही प्रकार की सेवा श्रीगुरु आज्ञा के अनुसार करनी चाहिये । "गुरु श्रुति संमत धर्म फल, पाइये विनहि कलेश ।" श्रीकृपानिवास स्वामी की महावाणी:—
"सतगुरु चातुर होय प्रवीना । अनुभववादी नित्य नवीना ॥"

सेवा की रुचि जानकर, उनकी रुचि अनुकूल सेवा करना श्रीसद्गुरु ही सिखावेंगे।

पंचसंस्कार का नित्य सम्हार

धारै निज गुरु हाथ करि धनुषादिक सब चिन्ह।
भरे अमित आनन्द उर पाइ निधी जिमि खिन्ह ॥६॥

पंच संस्कार प्राप्त करते समय अपने सद्गुरु भगवान के कर कंज से जिस प्रकार पाँचो मुद्राओं की शीतल छाप प्राप्त हुई थी, उस प्रकार मुद्राओं ('सब चिन्ह' को नित्य धारण करना चाहिये। ये सभी मुद्राएँ युगल लाल के निकटवर्ती परिकर ही धारण करते हैं। विचारना चाहिये कि इनके धारण से मैं भी समीपी परिकर बन गया। ऐसा समझकर हृदय में इतने अधिक आनन्द का अनुभव होना चाहिए जैसे "जनम रंक जनु पारस पावा।"

"कंठ में मधुर मनमोहिनी सुमाल जुग
जगमग जोत धनुवान बाँहुमूल लस।
भाल छबिजाल तर तिलक झलक बिंदु
चन्द्रिका समेत श्री अजब परिपूर रस॥
सीताराम नाम अंक मंडित समूह बपु
रामरज सहित प्रकास स्वच्छ भान सस।
(अ) युगल अनन्य कोटि कोटि खंड युत अंड
करन समर्थ पावनेस सुभ संत अस॥"

अर्ध इन्दु श्रीविन्दु युत, करै जो तिलक सुलेख ।
भौं तैं केस प्रयंत अति, ललित लिखै जुग रेख ॥१०॥

ऊपर पंच मुद्रा धारण करने की विधि बताई। इससे पहले ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करना चाहिये। नासिका मूल के ऊपर ललाट तल में सर्वप्रथम रोली का अर्ध चन्द्र लिखे। अर्थ चन्द्र के ऊपर रोली की ही विन्दु अंकित करे। उससे ऊपर श्री-रेखा नीचे मोटी ऊपर पतली नोकदार चित्रित करे। श्री के दोनों ओर युगल रेखा वाले तिलक की रचना करे। यह युगल रेखा भौंह से ललाटोपरि केश तक लम्बी होनी चाहिये।

"भ्रुवोन्तादपि चारम्य ललाटान्ते च धारयेत्।"

तिलक रामरज का कि मलकोटा ? तिलक मूल में सिंहासन लिखे कि वडगल ? पूज्य ग्रन्थ कर्त्ता मौन हैं। जिस साधक को अपने सदगुरु द्वारा जैसा प्राप्त हुआ हो, वैसा ही करे। (अर्धचन्द्रविन्दु भी श्री ग्रन्थकर्त्ता का अपना तिलक है। अन्य साधक को श्रीगुरु द्वारा जैसा मिला हो वैसा ही करे। (टीकाकार)

वायें कर पुनि धनु लिखै, दहिने कर जुग वान ।
नाम मुद्रिका हृदय लिखि, भाल चन्द्रिका जान ॥११॥

बाईं भुजापर श्रीधनुषजी का चित्र रामरज से लिखे। लिखने शब्द से जान पड़ता है कि श्रीकवि के जीवनकाल में श्रीधनुषादिक का लिखित चित्र ही अंकित करने की प्रथा रही

होगी । अब तो सभी मुद्रायें धातु की बनी प्रचलन में है। साधक छापकर अंकित करते हैं। खाशकर तप्त छाप तो धातु मुद्राओं के द्वारा ही सम्भव है। दाईं भुजा पर श्रीयुगलबाण अंकित करना चाहिए।

वामे करे धनुः कुर्य्याद्दक्षिणे वाणमेव च।
सविन्दु तिलकं कुर्य्यान्मुक्ति भागी भवेन्नरः॥
वाहुमूले धनुर्वाणेनाङ्कितो रामकिंकरः।
शीतलेनाथ तप्तेन तस्य मुक्ति र्न संशयः॥
— श्रीअगस्त्य संहिता।

श्रीनाम मुद्रा की छाप दोनों वक्षकपाट पर तथा उनके मध्य हृदय पर श्रीमुद्रिका की छाप अंकित करनी चाहिये। परन्तु आजतक श्रीनाम मुद्रा ललाट पर तिलक रेख के बगल में अंकित की जाती है। श्रीमुद्रिका की छाप दोनों कनपट्टीपर अंकित करने की रीति है। क्या हर्ज है यदि ललाट पर तथा हृदय पर भी अंकन हो? श्रीचन्द्रिकाजी की छाप तो ललाट में श्री रेखा के ऊपर धारण करनी चाहिये।

श्रीतुलसी माला की महिमा पुराणों में तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र पंच मुद्रा की महिमा श्रीनारद पाँचरात्र संहिताओं में विशेष रूप से वर्णित है। यहाँ स्थानाभावसे वे उद्धरण नहीं दिये जा सकते।

कंठलग्न धारैं जुगल मधुर तुलसिका दाम।
रामसिया युत शरन पद, राखै अपनो नाम॥१२॥

शब्दार्थ—कंठलग्न=कंठ से सटी हुई। मधुर=छोटे दानो (मनियों) के बने। दाम=माला, यहाँ कण्ठी से तात्पर्य है।

भावार्थ:—साधक को चाहिये कि श्रीसद्‌गुरु भगवान् से प्राप्त कण्ठी को कभी न त्यागे। कण्ट से सटी हुई, मधुर मधुर मनियाँ वाली, दो लर वाली, शुद्ध तुलसी की बनी कंठी गले में धारण किये रहे। सद्‌गुरु भगवान का दिया हुआ अपने इष्ट श्रीसीताराम जू के दोनों या कोई एक नाम के साथ शरणान्त नाम अपना लोगों से कहवावें। जन्म नाम से पुकारने पर न बोले। कहे मेरा नाम तो श्रीसियाशरण या राघव शरण (ऐसे कुछ) हैं।

पूज्य ग्रन्थकर्त्ता का यह आदेश उपासना शास्त्र सम्मत है। देखिये श्रीसनत्कुमार संहिता भी यही कहती है:—

तुलसी मालिका सूक्ष्मा कंठलग्ना द्विधाकृति।
दद्यात्तां क्षणमात्रोऽपि शिष्योनैव त्यजेत्पुनः॥

अर्थात् तुलसी की बारीक दो लर वाली माला कण्ठ में सटी हुई गुरुदेव देवें। उसे शिष्य क्षण भर पुनः नहीं त्यागें। पराशर स्मृति का आदेश है:—भगवान् के नाम के अन्त में शरण शब्द जोड़कर साधक का दीक्षोपरान्त नवीन नामकरण होना चाहिये। ऐसे नाम धराने से साधक के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वह पुण्यभागी बन जाता है।

योजयन्नाम शरणान्तं भगवन्नाम पूर्वकम् ।
तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नरः ॥

जपै नित्य सियराम के, युगल षडक्षर मन्त्र ।
अंगन्यास ध्यानादि सब करै यथाविधि तन्त्र ॥१३॥

श्रीसीतारामजी के युगलषड्क्षर अर्थात् दोनों मिलाकर द्वादशाक्षर मन्त्र का नित्य जप करे। जप के पूर्व अंगन्यासादि विनियोग तथा इष्ट ध्यान मन्त्रशास्त्र के आदेशानुसार करे।

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के बहुत से स्थानों में केवल श्रीराम षड्क्षर मन्त्रराज शिष्यों को देने की प्रथा है। इस वर्ग के लोग श्रीयुगल मन्त्रराज जप को आधुनिक रसिक भक्त कल्पित अतः अप्रामाणिक मानते हैं। अतः श्रीयुगलमन्त्र जप का आर्ष प्रमाण देना यहाँ आवश्यक है।

मन्त्ररहस्य के मर्मज्ञ ब्रह्मर्षि सत्तम श्रीअगस्त्यजी अपनी अगस्त्य संहिता में कहते हैं कि श्रीसीतामन्त्र के साथ श्रीराम मूल मन्त्रराज का जप करना चाहिये। न्यासादि भी निष्पाप साधकों को वहीं करना चाहिये।

सीता मन्त्रेण कुर्वीत मूलमन्त्र जपंस्तथा।
उपस्थानादिकाः कार्यास्तत्रैवगतकल्मषैः ॥

-- श्रीअगस्त्य संहिता अ० २५।१६

श्री अभियुक्त सारावलि में भी कहा है :--

सीतामन्त्रं जपेन्नित्यं राममन्त्रानुयोगतः ।
नित्य सम्बन्ध भावेन पारम्पर्य क्रमेण च ॥
श्रीमन्त्रपूर्वमुच्चार्य्य पश्चान्मूलं समुच्चरेत् ।
मुनीनामार्ष सिद्धान्त जपात्सिद्धिरनुत्तमा ॥

अर्थात् श्रीराम मन्त्र के साथ श्रीसीता मन्त्र का जप करे । नित्य सम्बन्ध भाव एवं परम्परा क्रम से जपे ।

श्रीसीता मन्त्र प्रथम, श्रीराम मन्त्र पीछे दोनों को साथ साथ उच्चारण करे । यह उपासक मुनियों का प्राचीन आर्ष सिद्धान्त है । इस जप से सर्वोत्तम सिद्धि प्राप्त होती है ।

नित्य कितनी संख्या में युगल मन्त्रराज जपे ? श्री-अगस्त्य संहिता का आदेश है कि छः हजार नित्य जपना चाहिए । उतना न हो तो एक ही हजार सही । कम से कम तीन सौ, नितान्त एक सौ से कम नहीं, यत्नपूर्वक जप अवश्य करे । मन्त्र प्राप्त करके जपे नहीं तो अधोगति होगी ।

षटसहस्त्रं सहस्त्रं च त्रिशतं शतमेव च ।
जपं कुर्यात्प्रयत्नेन नोचेत्प्राप्नोत्यधोगतिम् ॥२५।२४॥

चाहे जितने दिनों में पूरा हो जितने अक्षर के मन्त्र हैं, उतने लाख जपसंख्या पूरी करने पर अभीष्ट सिद्ध होता है ।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रमिष्टार्थान् साधयेत्ततः ।

— श्रीरामार्चन चन्द्रिका

श्रीअगस्त्य संहिता तथा अन्य उपासना ग्रन्थ के अनुसार मुक्ति प्रदायक श्रीराम मन्त्र जप के लिये न तो विनियोग (दीक्षा) न पुरश्चरण, न न्यास विधि की ही आवश्यकता है। यह तो केवल जप मात्र से सिद्धि प्रदान करते हैं :—

रामनन्त्रास्तु विपेन्द्र शीघ्रं मुक्तिप्रदा शृणु।
विनैव दीक्षां विपेन्द्र पुरश्चर्यां विनैव हि,
विनैव न्यास विधिना जपमात्रेण सिद्धिदाः ॥२५।६,१०॥

किन्तु मन्त्र-शास्त्र की मर्यादा रक्षार्थ पूज्य ग्रन्थकर्त्ता आदेश करतेहैं कि 'अंगन्यास ध्यानादि सब करै यथाविधि तन्त्र।' अत: यहाँ श्रीअवध के मन्त्रजापक समाज में प्रचलित परंपरानुगत न्यास विधि लिखी जाती है।

❁ अथ विनियोगः ❁

ॐ अनयोः, श्रीसीतारामयोः, श्रीयुगल षडक्षर मन्त्रराजयोः, श्रीशेष ब्रह्माणौ ऋषी, गायत्री छन्दसी, श्रीसीतारामौ परमात्मानौ देवते, श्रीं रां बीजे, नमोनमः शक्ती, सीतायै रामाय कीलके, श्रीसीताराम प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। इति संकल्पः।

अब आचमन करके प्राणायाम करना चाहिये। रां पूरकं १६ बार। श्रीं कुम्भकं ६४ बार। रां रेचकं ३२ बार।

❁ अथ ऋष्यादि न्यासः ❁

ॐ श्री शेष ब्रह्मणौ ऋषीभ्यां नमः मूर्द्धिन।
ॐ गायत्री छन्दसीभ्यां नमः मुखे।

ॐ श्रीसीताराम परमात्मा देवताभ्यां नमः हृदि ।

ॐ श्रीं रां बीजाभ्यां नमः गुह्ये ।

ॐ नमोनमः शक्तीभ्यां नमः पादयोः ।

ॐ सीतायै रामाय कीलकाभ्यां नमः सर्वाङ्गे ।

❁ अथ करन्यासः ❁

श्रां रां, श्रीं रीं, श्रूं रूं, श्रैं रैं, श्रौं रौं, श्रः रः ।

ॐ श्रां रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ श्रीं रीं तर्जनीभ्यां नमः ।

ॐ श्रूं रूं मध्यमाभ्यां नमः ।

ॐ श्रैं रैं अनामिकाभ्यां नमः ।

ॐ श्रौं रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

ॐ श्रः रः करतल करपृष्टाभ्यां नमः ।

❁ अथ हृदयादि न्यासः ❁

ॐ श्रां रां हृदयाय नमः ।

ॐ श्रीं रीं शिरसे स्वाहा ।

ॐ श्रूं रूं शिखायै वषट् ।

ॐ श्रैं रैं कवचाय हुम् ।

ॐ श्रौं रौं नेत्राभ्यां वौषट् ।

ॐ श्रः रः अस्त्राय फट् ।

❀ अथ दिग्बन्धनम् ❀

ॐ श्रीं रां रक्षतु प्राच्याम् । (पूर्व से)

ॐ श्रीं रां रक्षतु याम्याम् । (दक्षिण से)

ॐ श्रीं रां रक्षतु प्रतीच्याम् । (पश्चिम से)

ॐ श्रीं रां रक्षतु उदीच्याम् । (उत्तर से)

ॐ श्रीं रां रक्षतु आग्नेयाम् । (अग्नि कोन)

ॐ श्रीं रां रक्षतु नैऋत्याम् । (दक्षिण पश्चिम कोन)

ॐ श्रीं रां रक्षतु वायव्याम् (पश्चिमोत्तर कोन)

ॐ श्रीं रां रक्षतु ऐशान्याम् । (पूर्वोत्तर कोन)

ॐ श्रीं रां रक्षतु ऊर्ध्वम् । (ऊपर की ओर से)

ॐ श्रीं रां रक्षतु अधोमाम् । (मेरे नीचे से)

❀ अथ वर्ण न्यासः ❀

ॐ श्रीं रां मूर्द्धिन् । + ॐ सीं रां भ्रुवोर्मध्ये ।

ॐ तां मां मुखे । + ॐ यैं यं नाभौ ।

ॐ नं नं गुह्ये । + ॐ मं मं पादयोः ।

❀ अथ पदन्यासः ❀

ॐ श्रीं रां मूर्द्धिन् । ॐ सीतायै रामाय नाभौ ।

ॐ नमोनमः पादयोः ।

❀ अथ मन्त्र न्यासः ❀

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः मूर्द्धिन् ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः भ्रुवोर्मध्ये ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः मुखे ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः हृदि ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः नाभौ ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः गुह्ये ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः पादयोः ।

आचमन करके, ध्यान करे ।

ध्यायेच्चम्पक तद्वर्णां हेमाङ्गीं नीलवस्त्रकाम् ।
सर्वालङ्कार संयुक्ता रामवामे सदास्थिताम् ॥

❀ जपान्त में समर्पण ❀

श्रीसीताराम युगल षडक्षर मन्त्रराजं साङ्गोपाङ्गं यत् जपं कृतवान् तत्सर्वं श्रीसीतारामचन्द्रौ दक्षिणे करकञ्जौ समर्पणमस्तु ।

इन्दु विंदु श्रीरूप सिय, तिलक सियावर रूप ।
युगल तिलक यहि जानिये, सब तिलकन में भूप ॥१४॥

विन्दु सहित अर्द्धचन्द्र तथा श्रीरेखा तीनों श्रीसीता-स्वरूप हैं । श्रीके आजू-बाजू वाली दोनों तिलक रेखाएँ (अनु-कूल तथा दक्षिण उभय प्रकार के नायक रूप) श्रीरघुनायक-

स्वरूप हैं। यह युगल तिलक हुआ, सभी प्रकार के वैष्णव-समाज में प्रचलित तिलकों में नरपति।

सीता स्वरूपं श्रीचिह्नामर्द्धं चन्द्रेण विन्दुना।
रेखाकारेण रामस्य तेन वै युगलाख्यकम्॥

— श्रीविवेकसार चन्द्रिकायाम्।

युगल तुलसिका माल गल, युगल तिलक जेहि माल।
धनुष वान अंकित भुजा, सो अति प्रिय सिय लाल॥१५॥

जिस सौभाग्यशाली भक्त के गले में युगल लड़ वाली तुलसी-कण्टी बँधी है, ललाट में युगल तिलक अंकित है तथा दोनों भुजाओं पर श्रीधनुषबाण के चिह्न अंकित हैं, वह भक्त श्रीयुगल लाल का दुलारा हैं। श्रीप्रियतम सम्बन्धी चिह्न देख श्रीप्रियाजू दुलार करती हैं, श्रीप्रिया चिह्न देख प्रियतम दुलार करते हैं। यहाँ युगल कण्ठी और युगल तिलक कहकर, उप-लक्षण से सभी प्रकार की युगल उपासना करने का आदेश दे रहे हैं। श्रीयुगल-भावना की रीति श्रीरसिक-प्रकाश भक्त-माल की कवित्त सं० २७५ से सीखिये। वह इसप्रकार पठित हैः-

नाम जपै युगुल युगुलरूप हिय ध्यावै,
युगुल चरित्र रसिकन मध्य गावहीं।
मिथिला अवध धाम युगुल की टेक राखै,
युगुल प्रदच्छिना महलकी लगावहीं॥

युगुल प्रसाद चरणामृत युगुल नेम,
जैति भनि युगुल अनन्द उपजावहीं।
युगुल सुकंठ कंठी आयुध युगुल छाप।
युगल तिलक आदि मन अति भावहीं॥
सियाकी मुद्रा चंद्रिका, रघुवर के धनुवान।
जो धारै निज अंग में, सोइ सकल गुन खान॥१६॥
बिनु आचार्य संस्कार बिनु, मिलै न सिय रघुलाल।
विना वसीले प्राप्त नहिं, प्राकृत हू भूपाल॥१७॥

शब्दार्थ—संस्कार=पाँचो संस्कार। बसीले (बसील: अ० पु०)=माध्यम, बिचौलिया। प्राकृत=इस मर्त्यलोक वाले। भूपाल=राजा।

जब कोई बीतराग सन्त गुरु बनकर आपको अपना लें तो आप निश्चय जानें कि प्रियतम श्रीजानकीकांत जू ने अपनी कृपा ही को दूती बनाकर, आपको अपने पास लिवा लाने को भेजा है। रसिको के घरमें श्रीरसिकगुरु को श्रीकृपावती नामक दिव्य मैथिली सखी माना जाता है।

जौं रघुवीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम मोहि दरस हठि दीन्हा॥

जब सद्गुरु दीनदयालु आपको पाँचो संस्कार से संस्कृत कर देवें, तब आप जानिये कि श्रीजानकीवल्लभलाल जू के दिव्य दरबार में जिस वेषभूषा को धारणकर उपस्थित हुआ जाता है, वही आपको मिल गया। तब मिलन में क्या सन्देह

रहा ? अब भजन-भावना के चरणों से चल चलिये दरबार में। इस लोक का हो दृष्टान्त लीजिये। किसी राजा से आप को मिलना है, वहाँ के किसी राजकर्मचारी को माध्यम बनाइये। उस दरबार के शिष्टाचार सिखा कर, वहाँ के बाना धारण करा आपको राजा के पास ले जायेंगे। बेखटके मिलिये अब राजा से। दुष्कर कार्य माध्यमके द्वारा सुकर हो जाता है।

मुहर छाप निज नामकी, लिखि दिवान के हाथ।
ताहि देखिकै सहि करत, रीति यही महिनाथ ॥१८॥

राजा अपने द्वारा नियुक्त (दीवान) कर्मचारी का हस्ताक्षर पहचानता है और उस अधिकृत कर्मचारी द्वारा दी हुई किसी कागज पर या वस्तु पर अपने नाम की मुहर छाप देख कर जान लेता है कि यह मेरे निमित्त कर्मचारी ने मेरी मुहर छाप देकर भेजा है। राजा उसे सही अर्थात् स्वीकार कर लेता है। यही राजनीति मर्यादा पालक श्रीअवधेश जू के दरबार में भी बरती जाती है। अपने दीवान (अधिकृत गुरु) द्वारा तिलक छाप के मोहर देखकर उस जन को अंगीकार कर लेते हैं।

यातै रामानन्य जे रसिक ताहि गुरु धार।
धारै सब संस्कार अंग, तब सहि कर सरकार ॥१९॥

अतएव श्रीजानकी वल्लभलाल जू के जो कट्टर रसिकानन्य उपासक है, उन्हीं को गुरु निर्धारित करना चाहिये। वह सद्‌गुरु अपने करकंज से पाँचो संस्काररूपी मुहर छाप अंग में

अंकित कर देवें, तब निश्चय जाने कि श्रीयुगल सरकार ने मुझे सही सही स्वीकार कर लिया।

श्रीसीतारामीय रसिकानन्य भक्तों से सम्बन्ध, उन्हीं का सेवन, उन्हीं से स्नेहवर्द्धन, सत्संग करने का अगले दोहों में आदेश देंगे। अतः रसिक भक्तोंके लक्षण तथा उनको पहचानने की रीति जानना आवश्यक हो गया। यहाँ प्रसंग वश वह लिखा जाता है।

धाम रसिक लीला रसिक, नाम रसिक अरु रूप।
युगल कंठ कंठी लसत, शोभा होत अनूप ॥
युगल धाम मिथिला अवध, युगल नाम सियराम।
पियप्यारी गुनरूप में, पगे रहत सब याम ॥
युग लीला गावहिं सुनहिं, युगल ध्यान उर माहि।
जोड़ी युगल किशोर की, निरखि रहत सुधि नाहि ॥
धनुरवान अंकित रहै, चहै न जगके भोग।
तृन सम सुख संसार के, विषय लखै जिमि रोग ॥

— श्रीरसिक वस्तु प्रकाश।

तेई रसिक नरेश सुठि, शानदार सिरताज।
जाके प्रीतम गुन विना, कढ़त न अपर अवाज ॥

—श्री प्रेमचन्द्रिका।

फिरै उन्मत्त जग विषय विरक्त

लोकलाज कुल कानि जिन पीठ पाछे मेली है।

बोलनि हँसनि प्रेम प्रीति रसिकन सँग

और रीति जिन्हैं सब लागत गवेली है ।।

अग्रस्वामी आदि रस ग्रन्थनके पाठ करैं

और श्रुति पाठहू लों लागत कठेली है ।

बैठत उठत परा प्रेमा रति छाके रहैं

भाविक रंगीलन को चाल अलवेली है ।।

— श्रीरसिकप्रकाश भक्तमाल क० ७३८ ।

जे अनन्य सियराम के, रसिक भक्त गुनखानि ।

पूजै तिनको सकलविधि, निज कुटुम्ब जिय जानि ।। २० ।।

श्रीसीताराम के जो अनन्य रसिक भक्त हैं, वह सभी सद्गुणों को खान हो जाते हैं । उन्ही को अपना सच्चा सम्बन्धी अपने मन से निश्चय रूप से जाने । उनकी मन, वचन, कर्म से पूजा, सेवा सत्कार करे ।

रसिकाचार्य श्रीमत्कृपानिवास स्वामी अपने अनन्य चिन्तामणि नामक ग्रन्थ में लिखते हैं :—

प्रथम संग रसिकन को कीजै ।

जिन करि संग क्रम भ्रम दुख छीजै ।।

अंतर खोलि मिलै चित हित सों ।

सेवै तनकरि मनकरि चितसों ।।

जग नाते हाते करि डारै ।

रसिकन सों नातो प्रतिपारै ॥

स्वर्ग मुक्ति जग राज बड़ाई ।

तृन लों तोरि करै सिवकाई ॥

"युगल प्रेम रस मगन जे, तेई अपने जानि ।

सब बिधि अंतर खोलिकै, तिनहीं सो रति मानि ॥"

— श्रीप्रेमचन्द्रिका ।

असनादिक व्यवहार सब, राखै रसिकन संग ।

रसिकन को बानो धरै, सदा आपने अंग ॥२१॥

शब्दार्थ :—असन=भोजन । बानो=वेषभूषा ।

भावार्थ :—भोजनादि सभी व्यवहार, एकमात्र रसिक भक्तों के साथ करे। अपने कण्ठ में श्रीयुगल तुलसी की महीन माला, माथे पर युगल तिलक , भुजाओं तथा हृदय पर धनुष-बाणादिक छाप, श्रीसियास्वामिनी जू के श्रीअंग वर्ण सम पीत वस्त्र आदि रसिकोचित वेषभूषा धारण करे ॥

खानपान तो कीजिये रसिक मंडली माहि ।

जिनके और उपासना, तहाँ उचित 'ध्रुव' नाहि ॥

हास बिनोद रंग व्यवहारा ।

परमारथ स्वारथ परिवारा ॥

रसिकन संग सदा सत्र करिये।
लाज जाति कुल धर्म न डरिये॥
— श्रीअनन्य चिन्तामणि।

रसिकन संग मिलि महल में जाय
पद गावैं रसभरे स्वर ताल को मिलाय कै।
रसिकन संग मे प्रसाद स्वाद लहै
काहूसों न कछु चहै रूप संपतिको पाय कै॥
रसिकन संग औध बीथिन में डोलैं
बात हियकी न खोलैं और वस्तुमें लुभाय कै।
रसिकन संग बिनु और न सुहाय
ज्ञानी योगी समुदाय लागे नीरस बनाय कै॥
— श्रीरसिकप्रकाश भक्तमाल क० २३६।

मन वच क्रम करि राखिये, राम-रसिक पद प्रीति।
तवैं द्रवैं सियराम दोउ, कीरति जासु पुनीति॥२२॥

शब्दार्थः—क्रम=कर्म। द्रवै=रीझेंगे। कीरति (कीर्ति) =सुयश। पुनीति=पावन।

श्रीजानकीरमण जू के रसिकानन्य भक्तों के पादारविन्द में मनसे, वचनसे, क्रिया द्वारा भी प्रीति का निर्वाह करना चाहिये। पावन सुयश वाले श्रीयुगलकिशोर जू अपने दासानुदास पर विशेष रूप से रीझते हैं।

रसिकन की संगति करै, सुनै वचन सब काल ।
रसिकाई तबही मिलै, कृपा करहि सिय लाल ॥
— श्रीरसिक वस्तु प्रकाश ।

मंडलेश महिनाथ सम, विष्णु भक्त जिय जानु ।
सार्वभौम नृप कोटि सम, राम–भक्त अनुमानु ॥२३॥

शब्दार्थ :—विष्णु भक्त=वैष्णव । मंडलेश महिनाथ= बड़े राज्य के परतन्त्र छोटे राजा । सार्वभौम नृप=चक्रवर्ती सम्राट् ।

भावार्थ:—कर्मकांडी, योगी, ज्ञानी आदि सामान्य प्रजा हैं । उनमें सगुण ब्रह्म उपासक वैष्णव मंडलेश्वर राजा हैं, तो श्रीसीतारामीय रसिकानन्य सन्त चक्रवर्ती सम्राट् तुल्य मान्य हैं ।

निज निज ठौर सब राजत हैं भूपति से
इन्द्र आदि समता न पावत गुमान को ।
रैन दिन श्याम गौर रूप हिय मांहि धरे
रूखे जनहूं को करे रसिक समान को ॥
घोर भव त्रास सब देत है मिटाय
सुखदाई सियराम के सुनाइ गुनग्राम को ।
और सुख सकल वैकुण्ठ हूलों त्याग करै
अवध के वासी सम जगत में आन को ? ॥
— श्रीरसिक प्र० भक्तमाल क० २४० ।

राम भक्तके दरस तैं, होत सकल अघ नास।
सतसंगति तैं पाइये, सियवर महल निवास ।।२४।।

भावार्थ :—श्रीजानकीवल्लभ जू के भक्तों के दर्शन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। "सन्त दरस जिमि पावक टरई।"

रसिक भक्त के सत्संगसे श्रीजानकीरमणजू के कनक-महल का सशरीर मानसिक निवास तथा स्थूल शरीर त्यागने पर, अपने सखी स्वरूप से श्रीकनकमहल की नित्य टहल प्राप्त होती है। अत:—

महल माधुरी जो चहै, तो करु इनसे मेल।
अपर संग परसे नही, जैसे जलमें तेल।।
— श्रीरसिक वस्तु प्रकाश।

योगी जपि तपि संग तजि, करिये रसिकन संग।
रसिक संग करि होत जिय, सियपिय मिलन सुढंग।।२५।।

कामना पूरक देवताओं के मन्त्र जापक, तपस्वी—ये सब कर्मकांडी हैं, इनके संग से तथा इनकी रीति अपनाने से पुण्य लोकों की प्राप्ति होगी। पुण्य क्षीण होने से पुन: जन्म-मरण के चक्कर में पड़ो। योगी के संग से योग सीखोगे। यदि निर्वीज समाधि सिद्ध हुई तो कैवल्य मोक्ष मिलेगा। अपनी सत्ता मिटाकर नीरस ब्रह्मतेज मिलना। राम ! राम !! हम तो सेतमेत में मिलने पर भी ऐसी मुक्ति न लेंगे।

"अस विचारि हरि भगत सयाने।
मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाने।।"

हाँ, श्रीसीतारामीय रसिकानन्य भक्तों का सत्संग अलबत्त ! महान् लाभकारी है। श्रीजानकीरमण जू के महल वास प्राप्त करने की रीति इन्हीं के सत्संग में जानने को मिलेगी। जरा उस रीति को जान भी तो लीजिये।

प्रथम षडक्षर युगुल मन्त्र लेइ पुनि
मिथिला अवध जन्म नातो मन भावई।
ऊर्ध्वपुण्ड्र धनुवान तप्त भुज अंसन पै
कंठमें युगुल कंठी शोभा सुख छावई ॥
अग्रस्वामी भनित प्रवन्ध मिलि अष्टयाम
सेवा औ सिंगार बीज अंकुर बढ़ावई।
इष्ट को परत्व महामाधुर्य स्वरूप जानै
दम्पति उपासना की रीति तब पावई ॥

❀ निर्गुण मतवादों का संग त्याज्य है ❀

ज्ञानिन योगिन करत सँग, जे तजि रसिकन संग।
सूख गर्त सेवन करत, सठ तजि पावन गंग ॥ २६ ॥

भावार्थ :—श्रीसीतारामीय रसिक भक्तों का संग छोड़कर, यदि कोई किसी चमत्कार प्रदर्शनसे आकृष्ट होकर, वेदान्त विद्वान् अद्वैतवादी का, अष्टांग हठयोग साधक योगी का संग करता है, तो वह शठ है। शठ कहते हैं मूढ़ को, जड़ को।

क्योंकि वह इतना भी नहीं जानता कि जल का परम पावन रूप तो श्रीगंगा में मिलेगा, सूखे गड्ढे में जल कहाँ ?

रसिक साधक तो सगुणब्रह्म में प्राप्य वह रस खोजने चला है जिसको तैत्तिरीय २।७ "रसो वै सः।" छान्दोग्य ३।१४।२ "सर्वरसः" कहती है। छान्दोग्य १।१।३ का तो कहना है कि सभी उपलब्ध रसों से अनन्त गुणा अधिक स्वाद सगुण ब्रह्म श्रीरघुलालजू में है। "स एव रसानां रसतमः परमः परार्द्धः।" इस रस को तो रससिद्ध, रसानुभव सम्पन्न रसिक गुरु ही प्राप्त करा सकते हैं। उनकी संगति नहीं करते और चले हैं, रस खोजने योगी ज्ञानी के द्वार पर।

इनके निर्गुण ब्रह्म के पास रसवान् होने का गुण कहाँ पाइये ?

एक बात और ऐसे तो जीवमात्र में सहज स्त्रीत्व है, क्योंकि यह सगुण ब्रह्म की पराप्रकृति है—श्रीगीता ७।५ चिद्-शक्ति है – योगसूत्र ४।३४। अतः श्रीसनत्कुमार तन्त्र में जीव को आत्मस्वरूप चिन्तन के सम्बन्ध में कहा गया है।

आत्मानां चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवन सम्पन्नां किशोरी प्रमदा कृतिम्॥

अपनी इस स्त्रीरूपी जीवशक्ति को रस सुख प्रदायक तो वही सगुणब्रह्म हैं जिसका नाम ही है रमणशील, रमणीय रूपार्णव श्रीराम। क्योंकि पुरुषोचित गुण भी तो उन्ही में है। "लोके विख्यात पौरुषम्" श्रीवाल्मीकीय रामायण १।२५४।१

"प्रमदा मनोहर गुणग्रामाय रामात्मने ।" श्रीसनत्कुमार संहिता में श्लोक ५४ । ऐसे गुणगणों का रसन तो उन्हीं में सम्भव है । अच्छा योगीजी, ज्ञानीजी—ठीक ठीक बताइये ? आपके ब्रह्म किस लिंग के हैं ? नपुंसक (संस्कृत व्याकरण, लिंगानुशासन देखिये) स्त्री रूपा जीवशक्ति नपुंसक में रस खोजती है ! इसी से तो ज्ञानी योगी को सूखा गड्ढा कहा गया है ।

ज्ञान योग आश्रय करत, तजिकै भक्ति उदार ।

वालिस छाँह बबूर की, बैठत तजि सहकार ॥२७॥

शब्दार्थ :—वालिस (वालिश फा०)= ना समझ । सहकार=आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽति सौरभः । इत्यमरे २।४।३३ । अर्थात् अति सुगन्धित आम को सहकार कहते हैं ।

स्त्री पुरुष अन्त्यज यहाँ तक कि प्राणिमात्र को सुगमतापूर्वक स्वल्प साधन से भी परम सुगति देने वाली भक्ति अति उदार हैं । साधन के प्रारम्भ से ही जो "आनन्दसिन्धु सुखरासी ।" "सो सुखधाम राम अस नामा " है, वह अपने चाहने वाले को आनन्द देने लगते हैं । भक्ति का फल भगवत्प्रेम परमानन्द देने वाला है । इस अर्थ में भक्ति सुगन्धित आम्रवृक्ष से उपमित होती है । वृक्ष की छाया में जाते ही त्रिताप दग्ध शरीर शीतल हो जायगा । सुगन्ध से मन आमोदित हो जायगा ।

सुरभित स्वादिष्ट आमफल आस्वादन कर पुष्टि तुष्टि स्वतः होगी। भक्तों का पतन नहीं होता— "ताते नास न होइ दास कर" योग ज्ञान आदि बड़े ही क्लिष्ट साध्य हैं। मानो कांटेदार बबूर के पेड़ हों। बबूर की विरल छाया में शरीरका ताप भी नहीं मिटेगा। प्रारम्भिक अवस्था में साधक को इस मार्ग में आनन्दानुभव सम्भव नहीं। पुनः सिद्ध होने पर भी पतन की आशंका बनी रहती है।

ज्ञान के पंथ कृपान के धारा। परत खगेस लाग नहि बारा॥

"शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते ॥" श्रीगीता ६।४१

बबूर वृक्ष में फल नहीं लगता। इसी से तो कहते हैं कि सहकार वृक्ष की उपेक्षा करके बबूर छाया सेवन वाले मूर्ख हैं। बालिस ही तो हैं।

राम रूप सुख तहँ कहाँ, जो ध्यावत नित सून।
निधि कि निस्व घर पाइये, जहाँ न सेरक चून ॥२८॥

शब्दार्थ :—सून=निराकारब्रह्म। निधि=द्रव्य खजाना। निस्व (निःस्व)=दरिद्र। सेरक=सेर भर भी। चून (चूर्ण) =पिसान, आटा।

भावार्थ :—श्रीराम रूप ध्यान का सुख श्रीशंकरजी से पूछिये :—

श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा॥

निर्गुणब्रह्म के ध्यानविधिमें मस्तिकको विचार शून्य करनेका विधान है। मस्तिक शून्य करने वाले के पास सुख कहाँ। जिस

दरिद्र के घर में सेर भर आटा मिलना भी महाल है, वहाँ द्रव्य का खजाना कहाँ ? शून्य ध्याता का सुख सेर भर आटा के बराबर भी नहीं । वहाँ श्रीराम ध्याता वाली सुख की निधि कहाँ मिलेगी ?

विष्णु भक्ति बहु जन्म नर, करि करि होहि पुनीत ।
राम भक्ति तब पावहीं, कहत निगम अस नीत ॥२६॥

शब्दार्थ :—पुनीत=पवित्र । निगम=वेद । नीत= स्थापित मत ।

कोई साधन तत्पर मनुष्य अनेक जन्मों तक भगवान् विष्णु की भक्ति करके अत्यन्त पावन बन जाय, तब उसे श्री-जानकीपति जू की भक्ति मिलती है । यह सुनिश्चित सिद्धान्त वेदों द्वारा स्थापित है। प्रमाण पिछले दोहा ४ में दिया हुआ है।

प्रश्न :—श्रीविष्णु भक्ति तो एक ही जन्म में मुक्ति दे देती है । प्रमाण भी है :—

अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ।
अलं ज्ञान कथालापै भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥

अर्थात् तीर्थ, व्रत, योग, यज्ञ, ज्ञान, कथालाप से क्या प्रयोजन ? एकमात्र भक्ति ही मुक्ति देने में समर्थ है ।

तब वह मुक्त वैष्णव अनेक जन्म पर्यन्त भक्ति करने क्योंकर आवेगा ?

उत्तर :—भगवद्भक्ति से केवल मुक्ति ही नहीं बहुत कुछ मिलती है । जो कल्याण कर्मकांड से, ज्ञान वैराग्य से, योग

से, दान धर्म से तथा अन्यान्य साधनों से सम्भव है, वह सभी कल्याणवस्तु अति शीघ्र भक्ति मात्र से मिल जाती है। स्वर्ग लो मोक्ष लो, भगवद्धाम लो। जो चाहो वही मिलेगा श्रीमद्-भागवत का आदेश है :—

यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्चयत् ।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥
सर्वं मद्भक्ति योगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथिञ्चिद्यदि वाञ्छति ॥

भक्त की इच्छा पर है। मुक्ति न चाहकर सर्वश्रेष्ठ रामभक्ति पाने के लिये अन्तःकरण की आत्यन्तिक विशुद्धि चाहेगा, तो वह क्यों न मिलेगा ?

❀ श्रीराम भक्ति अनन्यता सापेक्ष है ❀

यहाँ से अगले छः दोहों में श्रीराम भक्ति सिद्ध होने के लिये अनन्यता की आवश्यकता बतावेंगे। अतः अनन्यता क्या है, समझ लेना चाहिये।

सुरनर ईश अनीश दिसि, नहि चितवत चख चाहि।
निज प्रीतम रस मगन रहि, गहि अनन्य अवगाहि ॥
— श्रीअनन्य प्रमोद।

परपति पेखति रेनुका हनी गई ततकाल।
विदित अहिल्या की कथा, बिन अनन्य यह हाल ॥ वही।

अनन्यता सीखनी चाहिये श्रीसुतीक्षणजी से—

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना ।
नाम सुतीछन रति भगवाना ॥

मन क्रम बचन राम पद सेवक ।
सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥

श्रीविनयपत्रिका पद १०४ में अनन्यता का पाठ पढ़िये—

जानकी जीवन की बलि जैहौं ।
चित कहै रामसीय पद परिहरि अब न अनत चलि जैहौं ॥१॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभु-पद-विमुख न पैहौं ।
मन समेत या तनके वासिन्ह, इहै सिखावन दैहौं ॥२॥
श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं ।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहि, सीस ईस ही नैहौं ॥३॥
नातौ नेह नाथ सों करि, सब नातो नेह बहैहौं ।
यह छर भार ताहि 'तुलसी' जग जाको दास कहैहौं ॥४॥

श्रीदोहावली में श्रीगोस्वामी पादने अपनेको चातक तथा अपने इष्ट श्रीसीतापतिजी को घनश्याम कहकर अपनी चातकी वृत्ति वाली अनन्यता दिखाई है ।

"एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास ।
एक राम--घनश्याम हित, चातक तुलसी दास ॥२७७॥

यहाँ से दोहा ३१२ तक कुल ३६ दोहाओं में अन्योक्ति अलंकार की रीति से अपनी अनन्यता चातक के व्याज से

दिखाई है। इस दोहा-समष्टि को चातक छत्तिसी कहते हैं। अनन्यता सीखने वालों को समझ कर पढ़ना चाहिये।

राम भक्ति भइ जानिये, मन अनन्य अस होय।
ज्यौं चातक तजि स्वाति जल, पिअत न सुरसरि तोय ॥३०॥

शब्दार्थ :—सुरसरि=गंगा। तोय=जल।

भावार्थ :—श्रीराम भक्ति मुझे प्राप्त हो गई है, इसकी पहचान है। अपना मन एकमात्र अपने परम प्यारे इष्टदेवता श्रीकौशल राजदुलारे जू में सब प्रकार से समासक्त हो जाय। दृष्टान्त में चातक को लीजिये। प्यास से छटपटाता पपीहा पियेगा तो केवल स्वाती जल। न मिले तो प्यास के मारे तड़प तड़प कर मर जाना पसन्द करेगा। अन्य जलमें परम पावन गंगा जल भी दिया जाय, तो नहीं छूयेगा। इसी प्रकार:—

लोचन चातक जिन करि राखे।
रहहि दरस जलधर अभिलाषे ॥
निदरहि सरित सिन्धु सर बारी।
रूप बिन्दु जल होहि सुखारी ॥

रसिकाचार्य श्रीमद्युगलानन्य शरणजी महाराज स्वरचित 'अनन्य प्रमोद' नामक पुस्तिका में भी यही कहते हैं:—

अमित ईश यद्यपि विदित, वेद पुरानन बीच।
तदपि न मेरो काज कछु, सियपिय बिन सब मीच ॥

श्रीसीतावल्लभ अखिल जीव ईश सिरताज ।
तिन पद पंकज प्रेम करु, परिहरि सकल समाज ॥
योग ज्ञान वैराग्य दृढ़, सुमति साधु गति धन्य ।
यद्यपि जग दुर्लभ नहीं, दुर्लभ गती अनन्य ॥३१॥

संसार में ऐसे बहुत साधु हैं, जिनमें किसी ने योगका, किसी ने ज्ञान का, किसी ने दृढ़ वैराग्य का, किसी ने सद्बुद्धि का आश्रयण कर लिया है, ये सभी परमार्थ साधक हैं। इनके अवलंबन लेने वाले धन्य हैं। परन्तु सीतारामीय रसिकानन्य भक्त तो अत्यन्त दुर्लभ हैं। खोजने पर लाखों में कोई एक मिलेंगे ।

कोटिन कल्प प्रजंत तउ, करै जोग जप ज्ञान ।
तऊ न पहुँचे परम पद, रहित अनन्य विधान ॥
भजन करत सबही सुजन, निज निज रुचि अनुसार ।
पै पावहिं नहिं देस वह, परानन्द सुखसार ॥
सब साधन सम्पन्न फल, मोक्ष बदहि बुध वेद ।
तेहि दिसि दृग भरि नहि लखै, निज अनन्य गत खेद ॥
विभिचारी डोलै विपुल, पढ़ि बहु वेद पुरान ।
भजन अनन्य सवाद बिन, सब मत धूरि समान ॥

— श्रीअनन्य प्रमोद से ।

फीके बिना अनन्यता, यद्यपि बड़े महान।
सुन्दरता बरबाद सब, बिना नाक अरु कान॥ ३२ ॥

भावार्थ :—कोई संत साधन बल से, संसार की दृष्टि में बहुत बड़े महान बन गये हैं, परन्तु अपने इष्टदेवमें अनन्य रूप से प्रेमासक्त नही हैं, तो उनकी महत्ता फीकी है। दृष्टांत देते हैं कि कोई स्त्री सर्वांग सुन्दरी है, किन्तु उनके कान नाक कटे हैं, तो उसकी सारी सुन्दरता व्यर्थ हो जाती है। उपासनाके सौन्दर्य में निखार होता है अनन्यतारूपी नाक कान से।

नाक कान विरहिता सुन्दरी पति का प्रियत्व नहीं पाती है, उसी भाँति अनन्यता हीन भक्त श्रीराघवलाल जू के प्रियत्व से वंचित रह जाता है। श्रीमुख वचन :—

समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥

त्यागि मतौ पंचायती, सिय रघुवर इक इष्ट।
करिये अस जिय जानिकै, बहुतन आस कनिष्ट ॥३३॥

शब्दार्थ :—कनिष्ट = सबसे नीच। पंचायती मतौ = पंचदेव उपासना।

भावार्थ :—स्मार्त वाले पंचदेवता की उपासना धर्मशास्त्र सम्मत मानते हैं। स्वर्ग, पुण्यलोक की प्राप्ति इससे हो सकती है, परन्तु श्रीसीतारामजी के दिव्यधाम के श्रीकनक-महलमें पहुँचने के लिए तो अनन्य उपासना ही एकमात्र साधन

है। एक देवता पर निर्भर रहने पर, सभी सार सम्हार का भार उनपर हो जाता है। बहुतो की आशा करनेवाले गणिका पुत्र के समान सबों से उपेक्षित रहते हैं।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुनः।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
— श्रीगीता ११।५४

अर्थात् श्रीअर्जुन ! मेरे को तत्वतः जानकर अन्त में मेरे धाम में प्रवेश करे, ऐसा अनन्य भक्ति से ही सम्भव है।

सुचिरं प्रोषितं कान्ते यथा पतिपरायणा।
प्रियानुरागिणी दीना तस्य सङ्गैक कांक्षिणी॥
तद् गुणान्भावयेन्नित्यं गायत्यपि शृणोति च।
तथा राघव लीलादेः स्मरणादि तथा चरेत्॥

अर्थात् किसी पतिपरायणा पतिअनुरागिनी सती साध्वी के पति चिरकाल से परदेश में रहते हैं। उनकी अनुपस्थिति में वह उनसे मिलने की विरह व्याकुलता में एकमात्र पति के ही गुणों का चिन्तन, श्रवण, गान करती है। उसी भाँति रसिक साधक को परमपति श्रीराघव प्राणप्यारे का लीलाचिंतन एवं रूप स्मरण सतत करते रहना चाहिये।

कूकुर जो दर दर फिरै, दुर दुर कह सब कोय।
एक द्वार गहिकै रहै, आदर पावै सोय॥

चातक करि यक इष्टता, जस भाजन सुखमूल ।
भँवर सदा रोवत फिरत, फूल फूल के कूल ॥

शब्दार्थ :—कूल=समीप ।

भावार्थ :—पपीहे को अपने प्रियतम स्वाती की बूँद ही पान करने वाली अनन्यता है। "बूँद आकास पपीहा चाहत यद्पि भरे अनगन सरिता सर ।" अतः सुखी है और संसार में उसके सुयश का गान होता है।

जग जस भाजन चातक मीना ।
नेम प्रेम निज निपुन नवीना ॥
२ । २३४ । ३

भ्रमर अनन्यता छोड़कर अनेकों पुष्पों के निकट मकरन्द पान के लोभ से भटकता है, कहीं पेट भर अघाता नहीं। अत: रोता फिरता है ।

चातक सतत सराहिये, गहे एक घन आस ।
अपर विहंग कुरंग सब, विगत अनन्य विलास ॥
— श्रीअनन्य प्रमोद से

सीस नवै सियराम को, जीह जपै सियराम ।
हृदय ध्यान सियरामको, नहीं और सन काम ॥ ३५॥

भावार्थ :—सिर झुका कर प्रणाम करे, एकमात्र उन्हीं को जिनके षड़क्षर मन्त्रराज में 'नमः' पद जोड़कर जपते हैं। सर्वस्व समर्पण काल में शिर भी तो उन्हीं को अर्पित हो चुका

है। नमः पद में भी तो समर्पण ही का भाव है, एक को अर्पित वस्तु दूसरे को पुनः कैसे अर्पित होगी ? "सीस ईस ही नहीं।" —श्री विनय

हाँ, उनके सम्बन्ध से श्रीगुरुजी को, उनके पार्षद को प्रणाम विधेय है। चराचर में भी उन्हीं को व्याप्त देखकर उन्हीं के नाते से प्रणाम करे।

सीयाराममय सब जग जानी।
करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

जीह से एकमात्र उन्हीं का नाम जपे।

और नाम जिह्वा नहि धरि है।
प्रापति समय भ्रम कछु परि है॥
कनक चाह मुख लोह बतावै।
लोह पाय पाछे पछितावै॥

हृदय में ध्यान सियराम का ही करना चाहिये। "मम हृदय भवन प्रभु तोरा।" उनके खाश घर में दूसरे को कैसे घुसने देंगे ? अनन्य उपासक को दूसरे से कोई प्रयोजन ही क्या ? श्रीदशरथनन्दन जानकीकांत अयोध्या बिहारी जो कहाते हैं, वही नामरूप लीला वाले हमारे इष्ट हैं। भिन्न नाम, धाम रूप, लीला वाले और कोई होंगे ! उनसे हमारा क्या मतलब?

अन्यान्य रसिकाचार्यो का भी यही सिद्धान्त है—

कथा सुनै सियराम की, गुन गावै सियराम।
लखै रूप सियराम को, जपै नाम सियराम॥

पतिव्रता को नेम करि, आन पुरुष नहि सूझ।
अपर देव परसे नहीं, तिलसै और न बूझ॥

— श्रीसुधामुखी कृत श्रीरसिकवस्तु प्रकाश से।

श्रीमत्कृपानिवास स्वामीजी स्वरचित अनन्य चिन्ता-मणि नामक ग्रन्थ में षट प्रकार की अनन्यता बताते हैं।

१—नामानन्य=(क) अपने ही इष्ट सम्बन्धी शरणान्त या दासान्त नाम अपना लोक से कहवावै। ख) जीभ से केवल अपने इष्ट का ही नाम जपें।

२-वाक्यानन्य=वाणी से अपने ही इष्ट की लीला कथा गुणगान आदि करे। अन्य कार्य में वाणी लगाकर व्यभिचार दोष न लगावे।

३—क्रियानन्य=शरीर की कर्मेन्द्रियों से जो भी क्रिया बन पड़े, वह श्रीजानकीबल्लभलाल जू का कैंकर्य रूपक हो।

४—लक्षणानन्य=कंठी, तिलक, पंच मुद्राओं की छाप, आदि सभी बाह्य दृश्य चिन्ह अपने ही इष्ट के सम्बन्ध वाला होवे। शंख चक्र की छाप नहीं, श्रीधनुषवाण की तप्त छाप अंकित करावे।

५—भक्तानन्य, अर्थात् प्रसादानन्य। श्रीसीताराम युगल जोड़ी को भी उन्हीं के युगल मन्त्र से अर्पित भोग को प्रसाद मानकर सेवन करें। जिस सिंहासन पर अनेक देवता हों, अथवा अकेले बाल रूप श्रीराम लला होवे, वहाँ की प्रसादी नहीं लेवे।

६—प्राप्ति की अनन्यता यह है कि दिव्य कनक महल की नित्य टहल छोड़कर, अन्य वस्तु अस्वीकार हो।

रंग महल प्रापति मन भाई।
आन प्राप्ति दुख नर्क सदाई॥

नर्क जाइबो जानि भल, परपति धाम न जाय।
नर्क कबहु पति याद ह्वै, जार लगे बिसराय॥

❁ श्रीसियावल्लभ-ऐश्वर्य ❁

जानै सब सियराम के, कला विभूती अंस।
रामनुशासन अनुसरत, हरि हर वाहनहंश॥३६॥

शब्दार्थ :—वाहन हंस=ब्रह्माजी।

हमारे इष्ट श्रीजानकीवल्लभलाल जू १-ज्ञान, २-शक्ति ३-बल, ४-ऐश्वर्य, ५-वीर्य और ६-तेज—भगवद्वाच्य छः प्रधान गुणों के साथ अनन्त दिव्य गुणगणों से विभूषित परिपूर्णतम परात्परत्तम ब्रह्म है।

ज्ञान शक्ति बलैश्वर्य वीर्य तेजांस्यशेषतः।
भगवच्छन्द वाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥

— श्रीभगवद्गुण दर्पणे।

दिव्यानन्त गुणः श्रीमान् दिव्य मङ्गल विग्रहः।
षड्गुणैश्वर्य सम्पन्नो मनोवाचामगोचरः॥

आपके अंशावतार में भी प्रायः उपर्युक्त छः गुण होते हैं। यद्यपि आपही से प्रगट होते हैं, तथापि भगवान ही हैं। भगवान श्रीकृष्ण, श्रीनृसिंह त्रिदेव आदि आपके अंशावतार हैं।

पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः।
अंशा नृसिंह कृष्णाद्या राघवो भगवान्स्वयम्॥

— श्रीब्रह्मसंहितायाम्।

श्रीराधिकाजी श्रीमैथिली जू के अंशावतार हैं।

हर्षिता राधिका तत्र जानक्यंशसमुद्भवा।
रामस्यांश समुद्भूतः कृष्णो भवति द्वापरे॥

— श्रीभुशुण्डि रामायण।

शम्भु विरंचि विष्णु भगवाना।
उपजहि जासु अंश ते नाना॥

ब्रह्म विष्णु महेश्वराद्या यस्यांशाः लोक साधकाः।
तमादि देवं श्रीरामं-विशुद्धं परमं भजे॥

विभूति अवतारः—ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज—छः गुणों में से ऐश्वर्य, तेज और शक्ति तीन गुण लेकर 'विभूति' अवतरित होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें विभूति का वर्णन करते हुये भगवान् ने उनमें उपर्युक्त तीन गुणों का होना आवश्यक बताया हैं।

यद्यद्विभूति मत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेवच।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंश संभवम्॥ १०।४१॥

कलावतार में छः गुणों में से कोई एक दो ही गुण होते हैं—ऋषिगण, चौदह मनु, देवता, मनुपुत्र, प्रजापति आदि कलावतार माने जाते हैं—

ऋषयः मनवो देवाः मनुपुत्राः महौजसः ।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥

श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये त्रिदेव श्रीराघवलालजू की आज्ञा के अनुसार अपना-अपना कार्य करते हैं ।

विधि हरि हरु ससि रवि दिसिपाल।......... ।
करि विचारि जियँ देखहु नीके ।
राम रजाइ सीस सबही के ॥

अतः सम्पूर्ण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, इन छः प्रधान गुणोंके साथ-साथ पोषण, भरण आधार, शरण्य सर्वव्यापक, और कारुण्य नामक षड्गुणोंसे सम्पन्न श्रीजानकी कान्त ही स्वयं भगवान् हैं ।

ऐश्वर्यंश्च समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥
पोषणं भरणाधारं शरण्यं सर्व व्यापकम् ।
कारुण्यं षडभिः पूर्णो रामस्तु भगवान्स्वयम् ॥
— श्रीभगवद्गुण दर्पणे

सबै उपासिक जानिये, रामसिया उपास्य ।
याँचत कर संपुट किये, दीजै निज पद दास्य ॥३७॥

भावार्थ :- श्रीसाकेताधीश परात्परतम ब्रह्म श्रीसीताराम ही सभी अवतारों के इष्टदेवता हैं। सभी इन्हीं की उपासना करते हैं। श्रीसदाशिव संहिता में श्रीलषणलालजू ने वेदों को बताया है कि श्रीमत्स्य, श्रीकूर्म भगवान, श्रीवाराह तथा श्रीनृसिंह भगवान्, भगवान् विष्णु, श्रीवामन भगवान्, श्रीपरशुरामजी, श्रीहलधर, श्रीकृष्ण, श्रीबुद्ध, श्रीकल्कि आदि सभी व्यापक ब्रह्म श्रीरामजी की ही उपासना करते हैं।

कौशल्यानन्दनं रामं केवलं भवखंडनम्........... ।
मत्स्य कूर्म वराहश्च नृसिंह हरि वामनैः ॥
भार्गव हलि कंसारि बुद्ध कल्किभिरुद्यतैः ।
उपास्यमानं देवेशं देवानां प्रवहं विभुम् ॥

उपर्युक्त सभी अवतार हाथ जोड़कर श्रीराघव जू से प्रार्थना करते रहते हैं कि कृपया अपने श्रीचरणों की सेवकाई हमें दीजिये— श्रीअंगदजी ने रावण से कहा—

सिव विरंचि हरि मुनि समुदाई ।
चाहत जासु चरन सेवकाई ॥
तासु दूत होइ हम......... ॥

यहि विधि धरि ऐश्वर्य चित, पुनि सब विधि माधुर्य ।
धरे चित्त तेहि जानिये, राम भक्ति अति धूर्य ॥३८॥

शब्दार्थ :—धूर्य=धुरन्धर, आचार्य कोटि गत ।

भावार्थ :—उपर्युक्त रीति से अपने इष्ट श्रीजानकी-वल्लभलाल जू में परतत्व विषयक परम ऐश्वर्य भाव चित्त में धारण करे। क्योंकि इसके बिना इष्ट में सुन्दर अनन्यता नहीं जमती।

जौलौं निज प्रिय इष्ट मधि, करति न मति परतत्व।
तौलौं होइ अनन्यता, नहि दृढ़ता शुचि सत्व॥
— श्रीअनन्य प्रमोद।

ऐश्वर्य ज्ञानके पश्चात् सब प्रकारका माधुर्य भाव अपने चित्त में धारण करने वाले ही श्रीराम उपासकों में धुरन्धर माने जाते हैं।

जाने जग सियराम तैं, उद्भव पालन नास।
तीन शक्ति सियराम की, करै तीन में वास॥३९॥

हरि मैं पालन सृजन विधि, शंकर मैं पुनि नास।
ऐसे प्रति ब्रह्माण्ड मैं, विधि हरिहर कर वास।४०॥

भावार्थ :—साधक को जानना चाहिये कि सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और महाप्रलयान्त में नाश के आद्य कारण श्रीमैथिलीकांत ही हैं।

ब्रह्माण्डानामसंख्यानां ब्रह्मविष्णुहरात्मनाम्।
उद्भवे प्रलये हेतू राम एव इति श्रुति॥
— श्रीकल्याण कल्पद्रुम पृ० २८।

अर्थात् वेद करते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, शंकर से संयुक्त अनन्त ब्रह्माण्डों के उद्भव, प्रलय के कारण श्रीराम ही हैं। त्रिदेवों को श्रीराघव जू ने अपने अंश से उत्पन्न किया हैं। तीनों को अपने अपने पदों पर नियुक्त करने वाले आपही हैं। आपही की दी हुई शक्ति से तीनों उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं। प्रमाण श्रीमानस—

संभु विरंचि विष्णु भगवाना।
उपजहिं जासु अंस ते नाना॥ १।१४४।६

हरिहि हरिता, विधिहि विधिता, सिवहि सिवता जो दई।
सोइ जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई॥
— श्रीविनय पत्रिका १ः५।२

जाके बल विरंचि हरि ईसा।
पालत सृजत हरत दससीसा॥ ५।२१।५

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता।
भिन्न विष्नु सिव मनु दिसित्राता॥ ७।८१।१

महाविष्णु श्रीराम के, दिव्य गुनन को रूप।
ताते तीनों जानिये, विधि हरिहर जगभूप॥४१॥

भावार्थ :—श्रीरघुलालजू के दिव्य गुणगण समष्टि के मूर्तिमान विग्रह हैं भगवान् महाविष्णु। पुनः इन्हीं महाविष्णु से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों जगदीश प्रगट हुये हैं। ऐसा जानना चाहिये।

"यस्यांशेनैव ब्रह्म विष्णु महेश्वरा अपि जाता महाविष्णु-र्यस्य दिव्यगुणाश्च स एव कार्य कारणयोः परः परमः पुरुषो रामो दाशरथि र्बभूव। — अथर्वणीय श्रुतिः।

अर्थात् जिनके अंश से ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न हुये हैं। महाविष्णु जिनके दिव्यगुणों के स्वरूप है, वही समस्त कार्यकारणों से परे परम पुरुष परात्पर ब्रह्म श्रीदशरथनन्दन रूप से आविर्भूत हुये हैं।

जनकसुता के अंश तें, महालक्ष्मि गुन खानि।
ताते यह तीनों भईं, उमा रमा ब्रह्मानि ॥४२॥

भावार्थ :—श्रीजनकराजेन्द्रनन्दिनी जू के अंश से दिव्य गुणगणों की खान भगवती महालक्ष्मी प्रगट होती हैं। तथा इन महालक्ष्मी के अंश से अनन्त उमा, रमा, ब्रह्माणि उत्पन्न हुई हैं।

सीता कलांशात्सख्यश्च शक्तयः सम्भवन्ति ताः।
यासां कला कलांशेन जाता नार्य्यश्रियादयः॥

— श्रीमहाशम्भु संहितायाम्।

अर्थात् श्रीमैथिलीजी के अंशकला से सखियाँ, शक्तियाँ (उन्हीं में श्रीमहालक्ष्मीजी) उत्पन्न होती हैं। उन्हीं की अंश-कला से श्रीलक्ष्मी आदिक उत्पन्न होती हैं।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी।
अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

भृकुटि विलास जासु जग होई।

राम वाम दिसि सीता सोई॥

— श्रीमानस १।१४८।३।४

पारब्रह्म जो कहत श्रुति, रामसिया तन भास।

व्यापित चर अरु अचर मैं, चिन्मय यथा अकास॥४३॥

भावार्थ :—श्रुति भगवती कहती हैं कि जो चराचर व्यापक चिन्मय परब्रह्म आकाश की भाँति सर्वत्र परिपूर्ण हैं, वह श्रीसीतारामजी के श्रीविग्रह का प्रकाश मात्र है।

एकं चापि परं समस्त जगतं ज्योतिर्मयं कारणं,
प्रागन्ते च विकारशून्यमगुणं निर्नाम रूपञ्च यत्।
तच्छ्री रामपादारविन्द–नखर प्रान्तस्य तेजोऽमलं,
प्रज्ञा बेदविदा बदन्ति परमं तत्वं परं नास्ति यत्॥

— परमहंसस्य परमसिद्धान्त संहितायाम्

अर्थात् वेद के ज्ञातागण कहते हैं कि ब्रह्म ज्योतिर्मय है, सर्वकारण है, अद्वय है, समस्त जगत् से परे हैं। आदिसे अन्त तक विकार शून्य रहने वाला है, वह निर्गुण है, नाम-रूप से रहित है। वही परमतत्व है, उससे बढ़कर कोई है ही नहीं। किन्तु त्रिकालदर्शी परमहंसों का कहना है कि वह ब्रह्म-प्रकाश तो श्रीजी के सहित श्रीरघुलाल जू के चरण नखमणि का प्रकाश मात्र है।

कृष्णादिक अवतार सब, राम अंश तैं जानु।
श्री भू लीला तीन यह, सिया अंश अनुमानु ॥४४॥

शब्दार्थ :—श्री=धन की अधिष्ठात्री देवी श्रीलक्ष्मीजी, भू=भूरंडाधार उच्यते (श्रीमन्महारामायणे) अर्थात् अनन्त ब्रह्मांड गोलकों की आधारभूता। लीला=(लीला बहुविधा लीला श्रीमहारामायण) अर्थात् लीलाशक्ति बहुत प्रकार की लीला रचने वाली है।

भावार्थ :—श्रीकृष्णादिक अवतार सब श्रीराम अंश से प्रगट होते हैं। श्रीसिया जू के अंश से श्री, भू, लीला—ये तीनों प्रधान शक्तियाँ प्रगट होती हैं।

नाम रूप लीला विविध धाम अवधि सुखदानि।
ये चारो सियराम के, परतर वेद बखानि ॥४५॥

भावार्थ :—नाम, रूप, विविध लीलायें, निरवधि सुख-दायक श्रीअवध धाम श्रीरघुलालजी के ये चारो और अवतारों से बढ़कर महिमामय हैं। ऐसा स्वयं वेद कहते हैं।

अथर्वण वेदे वेदसारोपनिषद् प्रथम खण्ड में लिखा है कि एक बार श्रीविदेह जनकजी श्रीयाज्ञवल्क्यजीके समीप जा-कर पूछते हैं—सुनिश्चित रूपसे कौन ऐसे महापुरुप हैं जिनको जानकर इस संसार से मुक्त होवें। उन्होंने बताया "कौशल्या-नन्दन श्रीरघुनाथ ही ऐसे महापुरुष हैं। उनके नाम, रूप, धाम और लीला की महिमा मन वचन से अगम्य है।

"जनको ह वैदेहो याज्ञवल्क्य मुपसृत्य पप्रच्छ को ह वै महान्पुरुषो यं ज्ञात्वेह विमुक्तो भवतीति ।।" स वाच । कौशल्येयो रघुनाथ एव महापुरुषः । तस्य नाम रूप धाम लीला मनोवचनाद्यविषयाः ।"

रामस्य नामरूपञ्च लीला धामं परात्परम् ।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द विग्रहम् ।।
— श्रीवशिष्ट संहिता अ० ६ ।

अवध सुधाम पै सकल लोक धाम वारौं
वारौं नाम और रामधाम सुधाधार पै ।
रामायन लीला पै सकल ईश लीला वारौं
और प्रभुताई राम प्रभुता अपार पै ।।
वारौं 'रसरंग' राम अनंग पै अनंग कोटि
प्रान वारौं राम के स्वभावशील प्यार पै ।
रामतन तेज पैं ब्रह्मनिराकार वारौं
दश अवतार दशरत्थ के कुमार पै ।।

—❀ श्रीरामनाम महत्व ❀—

नारायन आदिक अमित, भगवत नाम उदार ।
रामनाम के अंश ते, सिद्ध कहत श्रुति चार ।।४६।।

भावार्थ :—श्रीसगुण साकार ब्रह्म के श्रीनारायणादि असंख्येय नाम हैं । सभी परमपद देने में उदार हैं । किन्तु

चारो वेदों के कथनानुसार सभी श्रीरामनाम के अक्षरांश से ही सिद्धि देने में समर्थ हैं।

श्रीमहाशम्भु संहिता में श्रीमैथिली जू ने श्रीरघुराज-दुलारे से कहा है, प्राणनाथ ! कोई तो आपके मन्त्रराज के बीजाक्षर को मन्त्रश्रेष्ट बताते हैं, कोई ऊँकार को बताते। किन्तु मेरे मतसे तो ये दोनों मन्त्र श्रेष्ट भी आपके नामाक्षर से ही सिद्ध होते हैं। (तब आपही बतावें कि आपके नाम बड़े कि अन्य मन्त्र ?)।

प्रणवं केचिदाहुर्वै वीजं श्रेष्टं तथापरे।
तत्तु ते नामवर्णाभ्यां सिद्धिमाप्नोति मे मतम् ॥

अइउण्। ऋऌक्। आदि स्वर व्यञ्जनात्मक सभी अक्षर मय माहेश्वर सूत्रों को अपने डमरु की ध्वनि में प्रगट करने वाले वर्णों के मर्मज्ञ भगवान् शकर कहते हैं कि क्या वेद में, क्या व्याकरण में जितने स्वर व्यंजन वर्ण हैं, सभी रामनाम ही से उत्पन्न हुये हैं—इसमें कोई संशय नहीं।

वेदे व्याकरणे चैव ये च वर्णाः स्वरा स्मृताः।
रामनाम्नैव ते सर्वे जाता नैवात्र संशयः ॥

— श्रीमहारामायणे।

श्रीनारायण आदि भगवन्नाम वर्णों से ही तो बनते हैं। वर्णों के कारण श्रीरामनाम ही हैं। अतएव सभी नामों के कारण श्रीरामनाम स्वतः सिद्ध हैं।

इसी से श्रीपद्मपुराण में श्रीब्रह्माजी ने श्रीनारदजी से कहा है कि सभी भगवन्नामों में यावत् वैभव हैं, श्रीरामनामसे ही प्राप्त हैं, अतः श्रीरामनाम ही जपो। मैंने अच्छी प्रकार से जानकर कहा है।

सर्वेषां हरि नाम्नां वै वैभवं रामनामतः।
ज्ञातं मया विशेषेण तस्मात् श्रीनाम संजप ॥

सीतारामजु नाम दोउ, मम ऐश्वर्य उदार।
कहत ईशता एकको, दोऊ को उरधार ॥४७॥

श्रीरामचरित मानस में श्रीगोस्वामिपाद ने श्रीरामनाम की वन्दना करने के पहले सीताराम उभय नामों को तत्वतः एक कहा है। उनका तात्पर्य यही है कि श्रीरामनामके ऐश्वर्य जानकर पाठक श्रीसीतानाम का ऐश्वर्य भी उतना ही समझें।

गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
वन्दौं सीताराम पद, जिनहि परम प्रिय खिन्न ॥

गढ़नी वास्तव एकता, श्रवण सुमन गति दोय।
कथन एक के जानिये, दूसरहू तस होय ॥४८॥

शब्दार्थ :—गठनी=दोनों मिलाकर एक होना।

तत्त्वतः एकही अखण्ड अद्वय ब्रह्म माधुर्य लीला सम्पादन करने के निमित्त अनादि सिद्ध युगल पति पत्नी का स्वरूप धारण किये हुये हैं। दोनों की ललित सुमधुर लीलायें सुनने पर, युगल नाम, रूप, गुण, लीलाधारी अद्वय ब्रह्म को

मनभी समझ लेता है कि दोनों न्यारी-न्यारी लीला करने वाले दो हैं। परन्तु बुद्धिसे विचारनेपर दोनों तत्त्वतः एकही सिद्ध होते हैं। अतः एकही श्रीरामनामका प्रभाव, परत्व, महत्व जहाँ-जहाँ कथन किया गया है, वहाँ वहाँ जान लेना चाहिये कि दूसरे श्रीसीतानाम का ऐश्वर्य भी वही और उतनाही है।

श्रीजानकी विलासोत्तममें कहा गया है, श्रीराम ही सीता है। श्रीजानकी ही रामचन्द्र है। दोनोंमें कोई भेद नहीं कहा गया है। इस विचित्र तत्त्वको मानकर सन्तजन संसार की मृत्युसे, कालसे पार पा गये हैं।

रामः सीता जानकी रामचन्द्रो
नाहु भेदो ह्येतयोरस्ति किञ्चित्।
सन्तो मत्वा तत्त्वमेतद्विचित्रं
पारं याताः संसृते मृत्युकालात्॥

नारायण अष्टाक्षरी तामें सार रकार।
करिये भिन्न रकार तो, होत अशुद्ध उचार॥४६॥

नाय नाय अष्टाक्षरी, पंचाक्षरि नशिवाय।
रहित रकार मकार के, तेहि युत पुनि फलदाय॥५०॥

भावार्थ :—सम्पूर्ण रामनामकी महिमा तो अगम-अपार है। श्रीरामनाममें प्रयुक्त र और म अक्षर भी अनन्त फलदायक मन्त्र हैं। श्रीब्रह्मयामल नामक मन्त्रग्रन्थमें रकार

सभी जीवों के सर्व पाप जलाने वाले कहे गये हैं। "रकार: सर्व जीवानां सर्व पापस्य दाहक: ॥" उसी भाँति मकार को सर्वशास्त्र सिद्धान्तसार एवं सर्व मुक्तिदायक कहा गया है।" "मकार: सर्वशास्त्राणां सिद्धान्त: सर्वमुक्तिद: ॥" दोनों वर्णरत्नों के प्रभाव आप स्वतन्त्ररूपसे वहीं श्रीब्रह्मयामलमें पढ़ें। यहाँ बानगी मात्र दिखायी गयी है।

कहने का तात्पर्य यही है कि सभी प्रचलित मन्त्रोंमें जो प्रभाव भरे हैं, उसका कारण है रकार या मकार या दोनों की स्थिति उन उन मन्त्रों में। नमूना के लिये अष्टाक्षर नारायण मन्त्र लीजिये। 'नमो नारायणाय' इनसे रकार मकार हटाकर देखिये। "न ना य णा य।" अशुद्ध उच्चारण हुआ कि नहीं? इसके जपनेसे फल? आपही बताइये। पुन: पंचाक्षरी श्रीशिव-मन्त्र को लीजिये, "नम: शिवाय" इससे मकार निकाल लीजिये। क्या रहा? "न शिवाय।" जपिये। विपरीत फल! इसीसे तो कहते हैं कि श्रीरामनाम पूरा न जपना बने तो दोनों में से कोई एक ही अक्षर ले लीजिये। चाहे किसी भी मन्त्र में इसे मिला लो, जपो फलदायक होगा।

यही बात श्रीशुक संहिता में कही गई है।

नाय नाय यद्दते ऽक्षराष्टकं
पञ्चकं च न शिवाय यद्विना।
मुक्तिदं भवति यद्द्वयोर्वशा-
त्तद्द्वयं वयमुपास्महे किल ॥

अर्थात् रकारके बिना अष्टाक्षर नारायण मन्त्र नाय-नाय रह जाते हैं तथा पञ्चाक्षर श्रीशिवमन्त्र मकार के बिना नशिवाय हो जाते हैं। इन दोनों वर्णोंके प्रभावसेही उपर्युक्त मन्त्र मुक्तिदायक बनते हैं। अतः हम लोग उन दोनों वर्णों को मिलाकर पूरा श्रीरामनामहीकी निश्चयपूर्वक उपासना करते हैं।

रामनाम अशांश तें, होत प्रनव पुनि सिद्ध।
सो सब मन्त्रन पर लसत, ताबिन मन्त्र असिद्ध ॥ ५१ ॥

भावार्थ :— प्रणव कहते हैं ॐ को। यह वेद के प्राण-भूत हैं। सभी अल्पवीर्य मन्त्रोंके आदिमें ॐ प्रणवकी योजना की जाती है। ॐ सहित मन्त्र प्रवल बनकर सिद्धि-दायक बन जाते हैं, अन्यथा अल्पवीर्य मन्त्र सिद्ध नहीं होते। ऐसे सर्व मन्त्रशिरोमणि प्रणव भी श्रीरामनामाक्षरों से ही सिद्ध होता है।

रामनाम्नः समुत्पन्नो प्रणवः मोक्षदायकः।
— श्रीमहारामायण।

अतः श्रीरामनाम परात्पर मन्त्र है।

द्विभुज श्याम दशरथ कुँवर, राम रु जनककुमारि।
कारज कारन तें परें, उनहि कहत श्रुति चारि ॥५२॥

भावार्थः—दो भुजा वाले साँवरे सलोने चक्रवर्ती श्रीदश-रथजूके दुलारे, राजकुमार तथा योगियों ज्ञानियोंको भी ब्रह्म-ज्ञान सिखाने वाले श्रीविदेह महाराज श्रीजनकजी की राज-

दुलारी ललित लड़ैती नित्य किशोरी श्रीसिया महारानी दोनों प्रियाप्रियतम कार्य नाम जगत और जगदीश त्रिदेव, कार्य नाम महाविष्णु, महालक्ष्मी—दोनों से परे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र स्वेच्छाचारी परात्परतम ब्रह्म हैं। ऐसा चारों वेद कहते हैं।

"यस्यांशेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा अपि जाता महाविष्णुर्यस्य दिव्यगुणाश्च स एव कार्य कारणयोः परः परमः पुरुषो रामो दाशरथिर्बभूव।" — अथर्वणीय श्रुति।

अर्थात् जिनके अंशसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और महाविष्णु प्रगट हुये हैं, जिनमें परम दिव्य अनन्त गुण हैं। वह कार्य कारण से परे परात्पर प्रभु श्रीदशरथ नन्दन राम हुये।

रामरूप रूपन पती यथा नृपति पति राम।

एक दुइक गुन कहुं लसत, राम अमित गुन धाम ॥५३॥

भावार्थ: जितने रूपवान देखे सुने जाते हैं, उन सबों से बढ़कर रूप होने से रमणीय रूपार्णव रघुलालजी रूपों के पति कहे गये हैं।

जुवती भवन झरोखन्ह लागीं।
निरखहिं राम रूप अनुरागीं ॥

कहहिं परस्पर बचन सप्रीती।
सखि इन्ह कोटि काम छवि जीती ॥

सुर नर असुर नाग मुनि माहीं।
सोभा असि कहुँ सुनिअत नाहीं ॥

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी।
बिकट बेष मुख पञ्च पुरारी॥
अपर देउ अस कोउ न आही।
यह छवि सखि पटतरिअ जाही॥

पुनः सभी मण्डलेश्वर राजाओं के मुकुटमणि चक्रवर्ती सम्राट् भी वही राघवजू हैं। अतः उन्हें नृपति-पति कहा गया।

भूमि सप्त सागर मेखला।
एक भूप रघुपति कोसला॥

दिव्यानन्त कल्याण गुणगण सिन्धु श्रीराघव जू में—

१-सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य आदिक असंख्य कायिक गुण हैं।

२-उसी प्रकार दया, कृपा, करुणा, अनुग्रह, वात्सल्य, सौशिल्य, सौहार्द आदि मानसिक गुण भी असंख्य हैं।

३-पुनः मितभाषिता, सत्य, प्रिय हित साधक बचन बोलना।

"गान्धर्वेषु च भुवि श्रेष्ट बभुवः भरताग्रजः" कहकर श्रीमहर्षि वाल्मीकिने आपको संगीत विद्यामें भू-मण्डल भरमें सर्वश्रेष्ट बताया है—ये सब आपके वाचिक गुण हैं। सभी मिलाकर आपके दिव्यगुणोंकी गणना सम्भव नहीं हैं। इसी दृष्टिसे भगवान शंकरजीने "राम अनन्त अनन्त गुनानी" तथा श्रीकाकर्षि ने—"राम अमित गुन सागर थाह कि पावई

कोई ॥" कहा है। आपके अनन्त गुणोंमेंसे एक दो गुण किसी को मिला तो बड़ा गुणवान् कहाने लगता है।

❀ श्रीजानकीजीवन जू की राजमाधुरी ❀

यद्यपि श्रीपति सुभग अति, सियपिय सम नहि राज।
चारि भुजा वाहन गरुड़, सबै अडबडी साज ॥५४॥

भावार्थ:—श्रीलक्ष्मीकांत भगवान् नारायण अत्यन्त सुंदर और ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, होना भी चाहिये। उनकी पत्नी श्रीजी शोभा और ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी जो हैं।

परन्तु श्रीजानकीकान्त जू की तो बात ही और है। अत: इनकी बराबरी कैसे करेंगे ? ऐश्वर्य में तुलना कीजिये तो श्रीराघव जू कोटि विष्णु सम पालनकर्त्ता हैं। माधुर्य तो नरवत् लीला को कहते हैं। 'उमा करत रघुपति नर लीला।' नर को चार हाथ तो होते नहीं। राम ! राम !! नरशोभा ही बिगड़ गई। किसी आदमीको आपने चिड़िये की सवारी करते देखा है ? गरुड़ है श्रीलक्ष्मीपति की सवारी ! इतना धन है श्रीलक्ष्मीजी के पास, तो अपने पतिदेव के लिए रथ, विमान क्यों नहीं बनवा देतीं ? अधिक नहीं कहेंगे। समुद्र में निवास और विषधर साँप की छाती पर सोना ! विशेष पोल नहीं खोलेंगे। सभी बातें वहाँ अटपटी हैं।

नरजाति का नेह-नाता तो अपने सजातीय पुरुषोत्तम रघूत्तमजी से ही बनना सम्भव है।

अच्छा एक बात और बताइये—श्रीलक्ष्मीपतिजी के माता-पिता भाई आदिक सम्बन्धी है कि नहीं? नही हैं। तब श्रीलक्ष्मीजी किसको सास, ससुर, देवर आदि स्वजन कहेंगी? लीजिये! वहाँ सम्बन्ध माधुरी भी नही है। भाई, हम लोग माधुर्य उपासक हैं माधुर्य! खट्टा नहीं रुचता है। माधुरी चाहिये, माधुरी!

गज घोड़े रथ पालकी, मनि भूषित बहु रंग।

कोटिन सो असवार युत, कोटिन कोतल संग ॥५५॥

शब्दार्थ :—कोटिन = असंख्य। कोतल = विना सवार के ही खाली सुसज्जित।

भावार्थ :—

राम राज कर सुख सम्पदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥

श्रीकौशलेन्द्रजू की वाहनशालामें नाना प्रकार की असंख्य सवारी हैं। देखना हो तो किसी शोभा यात्रा के अवसर पर सवारियों का ठाट देख लेना। रंग-विरंग की अनमोल मणियों से अलंकृत असंख्य हाथी, घोड़े, रथ, पालकी देखिये। असंख्यों पर तो सवार बिराजे हैं। असंख्य खाली साथ-साथ जा रही है। अवसर विशेष पर काममें लाने के लिये। रास्ते में इष्ट मित्र वन्धु-वान्धव मिल गये तो उन्हें इन पर बैठाते जायेंगे। किसी याचकने सवारी की याचनाकर दी तो, "मंगन लहहि न जिनके नाहीं।' ऐसो को उदार जग माही।" के

यहाँ याचक बिमुख नहीं जाता। सजी हुई सवारी मिलेगी आपको चाहिये क्या ?

चतुरंगी सेना अमित, चलत हलत अहिनाथ।
वंदीजन बिरदावली, वदत सुकोटिन साथ ॥५६॥

शब्दार्थ :—अहिनाथ=शेषजी। वदत=गान करते हैं।

भावार्थ :—उपर्युक्त सवारी-वर्णन के क्रम में कहते हैं कि १-रथारोही, २-गजारोही, ३-अश्वारोही तथा ४-पदचर योद्धा। चारो मिलकर चतुरंगिणी सेना बनाते हैं, ये असंख्य हैं। भाई,—

रामनाम गुन चरित सुहाये।
जनम करम अगनित श्रुति गाये ॥

वहाँ किसी भी चरितांगकी गणना अज्ञता ही तो है। हाँ, तो जब श्रीकौशलेन्द्र जू की चतुरंगिणी सेना चलती है तो उस भार को धरणीधर शेष भगवान् नहीं सह सकते हैं। उनका मस्तक मारे भारके हिलने लगता है। उस सेनाके साथ महाराजाधिराज श्रीराघवेन्द्र सरकारके सुयशका गान करते हुये असंख्य बन्दी (भाँट) लोग भी चलते हैं। राजमाधुरी है, राजमाधुरी !

कनक छड़ी कर मनि जनित, कोटिन सँग चोपदार।
कोटिन गावत जाँगरे, करि करि जस विस्तार ॥५७॥

शब्दार्थ :— कनक=सोने की। जाँगरे=भाट, बन्दी।

चोपदार=छड़ी लेकर आगे आगे चलने वाला नकीब। हटो-हटो, रास्ता खाली करो। महाराज की सवारी आ रही है। ऐसा चिल्लाने वाले।

भावार्थ :—आपकी सवारीके आगे चलने वाले असंख्य नकीब रहते हैं। उनके हाथोंमें सोनेकी मणिनग जटित छड़ी होती है। बन्दीजन भी गान करते चलते हैं। उनके गानका विषय होता है आपके सुयशका अतिरञ्जन, बढ़ा-चढ़ाकर कहना।

यहाँ हम बन्दियों द्वारा अतिशयोक्ति अलंकार विभूषित सुयश की एकाध बानगी प्रस्तुत करते हैं।

एक बन्दीने कहा—हे राजेन्द्रमौलिमणे! यदि आप अत्युक्ति से कुपित न हों और मेरे वचनको मिथ्यावाद न मानें तो मैं कुछ कहूँगा? यदि आप कहें कि भय है तो कहते क्यों? उत्तरमें मैं निवेदन करुँगा कि आपके अद्भुत यशोगानके निमित्त किसकी जीभ नहीं चटपटाती है?

अत्युक्तो यदि न प्रकुप्यसि
मृषावादं न चेन्मन्यसे।
तद्ब्रूमोऽद्भुत कीर्तनेन रसना
केषां न कण्डूयते॥

— श्रीहनुमान्नाटक १४।८३

हे महाराधिराज! दिग्वधूटियों ने आपकी कीर्ति रूपी धानको कूटा। कैसे? सुमेरुपर्वतका बनाया ऊखल, आकाश गंगा का मूसल। कूटनेपर चावल समान सुयश सार बन गया

तुषारशिखर हिमालय, चावल कण बन गये आकाश के तारा-गण और धूल बन गई चन्द्रमण्डल की चिकनी चाँदनी ।

कृत्वा मेरुमुलूखलं रघुपते वृन्देन दिग्योषितां

स्वर्गङ्गा मुसलेन शालय इव त्वत्कीर्तयः कण्डिताः,

तासां राशिरसौ तुषारशिखरी तारागणास्तत्कणाः

प्रोद्यत्पूर्ण सुधांशु बिम्बमसृणा ज्योत्स्नाश्च तत्पांसवः ॥

— श्रीहनुमान्नाटक १४.८५

दूसरे वन्दीने कहा—राजराजेश्वरेन्द्र ! कुछ मेरी भी सुन लीजिये। आपके उज्ज्वल सुयशने सम्पूर्ण जगत् को उज्ज्वलतासे आच्छादित कर दिया। जगतकी सारी सफेद वस्तुयें उस उज्ज्वलतामें एकमेक होकर अदृश्य सी बन गई ।

परमपुरुष भगवान् विष्णु अपने सफेद क्षीरसमुद्र ढूढ़ते फिरते हैं । भोले बाबा का तो अपना शुभ्रहिमाच्छादित कैलाश ही खो गया । ढूढ़ने पर मिलता ही नहीं । देवेन्द्रका ऐरावत हाथी गुम हो गया । राहू को अपने ग्रास शुभ्रचन्द्रमा का पता नहीं लग रहा है । लोकपितामह ब्रह्मा अपना वाहन सफेद हंस खोजते-खोजते थक गये । क्या करें ?

महाराज श्रीमज्जगति यशसा ते धवलिते

पयःपारावारं परमपुरुषस्ते मृगयते ।

कपर्दी कैलाशं कुलिशभृद्भौमं करिवरं

कलानाथं राहुः कमलभवनः हंसमधुना ॥

एक ने कहा—बन्दी भाई, इतनी गप्प नहीं हाँकते ! विदूषक ने कहा- बंदी यार । खूब कहा ! बलिहारी !! कैसा कहकहा मच गया !!!

तखत चढ़ी नृत्यत सुभग, बारमुखी बहुसंग ।

भांड़ अमित आकल्प रचि, करत सुनाना रंग ॥५८॥

शब्दार्थ :—तखत=नृत्य मंच । सुभग=सुन्दरी । बार-मुखी (सं० बारमुख्या =प्रधान वेश्या । अमित=अनगणित । आकल्प=बनावटी वेष, स्वांग । रंग=प्रहसन । भाँड=हसौड़ा, मसखड़ा ।

भावार्थ :—श्रीजानकीजीवन जब सभाभवनमें विराज-मान होते हैं । उस समय नृत्यमञ्च पर खड़ी होकर, अनेकों प्रमुख रूपवती बारांगनाएँ एकसाथ सांस्कृतिक नृत्यकला दिखाती हैं । अनेकों विदूषक अनेकों प्रकार के स्वांग सजकर अनेकों प्रकार के प्रहसन नाट्य करते हैं । यह राजसभाके मनोविनोद की रीति है ।

सम वय सम बाहन चढ़े, करि करि सम शृंगार ।

संग सखा सोभित अमित, छबिनिधि राजकुमार ॥५६॥

शब्दार्थ:—सम=बराबरी । वय=उम्र । बाहन=सवारी अमित=असंख्य । छबिनिधि=छरे छबीले छयल सब, सूर सुजान । राजकुमार=रघुवंश में उत्पन्न सभी बालक राजकुमार कहाते हैं । रघुवंश राजवंश हैं, राजपरिकर हैं ।

भावार्थ :—श्रीरघुलालजीसे अधिक अवस्था वाले सुहृद सखा कहाते हैं। आखेट के लिए सवारी निकलती है, तो ये हाथी पर चढ़कर आगे-आगे चलते हैं। इनसे छोटी अवस्था वाला नर्म सखा, बहुत कम उम्र वाले मधुर सखा कहाते हैं। नर्म सखा रथपर चढ़कर पीछे-पीछे चलते हैं।

प्रस्तुत दोहेमें समान अवस्था वाले प्रिय सखा की चर्चा है। ये सभी साथ-साथ चलते हैं।

को साहिब सेवकहि निवाजी।

आपु समान साज सब साजी॥

इस नीति से श्रीरघुलालजी ने इन समान वयक्रम वाले प्रिय सखाओं के भूषण वसन आदि शृंगार सामग्री अपने ही समान दे रखी है। अपने ही समान श्यामकर्ण घोड़े सबोंको दिया है। अतः एक अवस्था, एकही समान शृंगार करके, एक ही समान घोड़े पर चढ़े सभी प्रकार से समता सज रहे हैं। सभी छविनिधान राजकुमार असंख्य सखा साथ-साथ चलते हैं।

प्रिय सखा रघुनन्द चन्द के वय बल वेष सँवारे।

भूषन वसन राम सम सोहत वदन मदन मद गारे॥

इनमें प्रमुखों के नाम हैं—सर्वश्री प्रतापी, शुकमणि, सुशिरा, दीर्घबाहु, चारुचन्द, हरिदश्व, शीलमणि, अजित, सुमुख, शुकनास, वीरकर्मा, अतिविक्रमी, मोहनांक, वीरमर्द, सुकण्ठ, जयसेन, आदि।

— श्रीप्रेमसुधारत्नाकर से उद्धृत।

वीरसिंह आदिक के सुवन प्रसिद्ध जेते-

औरहु वरन कुल भूषन जो भये हैं।

राजसुत नेह गहे सर्वकाल संग रहे-

खेटकादि लीला मधि लाल जहाँ गये हैं॥

— श्रीरसिक प्र० भक्तमाल क० ३०।

सौज अनेकन कर धरें, कोटिन किंकर संग।

वयस मधुर सेवा चतुर, छबि लखि मोह अनंग॥६०॥

शब्दार्थः—मधुर वयस=छः सात सालके छोटे बालक। अनंग=कामदेव। किंकर=सेवक, दास।

भूमिका—प्रस्तुत दोहे में दासोंकी चर्चा है। यद्यपि चार प्रकारके श्रीरामदास हैं—

१–अधिकृत, अधिकार प्राप्त श्रीब्रह्मादि त्रिदेव, देवेन्द्र आदि

२- आश्रित, श्रीविभीषण, श्रीसुग्रीव, श्रीअंगद, कोल-भील आदि। ज्ञानिचर आश्रितमें श्रीअगस्त्य, सुतीक्ष्ण, सरभंग, गौतम आदि।

३- पार्षद-भ्रातत्रय श्रीहनुमन्तलालजी, धर्मपाल, दिवाकर आदि।

४- अनुग—

सर्वकाल रघुलाल की, परिचर्य्या मे लीन।

संग संग सबकाल रहि, तिनहि अनुग करि चीन॥

श्रीजगदेव, सुदेव, सुलोचन, यज्ञसेन, रणधीर, देवदत्त, वसुमान, केलिनिधि, चन्द्रकान्त आदि इनके नाम हैं। इस दोहे में इन्हीं अनुगों की चर्चा है।

भावार्थ :—झाड़ी, पानदान, पीकदान आदि अनेकों सेवा-सामग्री अपने-अपने हाथोंमें लिये, असंख्य किंकर संग में सेवा तत्पर रहते हैं। ये सब कामाधिक सुन्दर हैं। यद्यपि अल्पवयस्क बालक हैं, परन्तु सेवा कार्यमें बड़े प्रवीण हैं। मधुर अवस्थाके नाते इन्हें महलकी सेवा भी प्राप्त है।

प्रीति पयोनिधि मीन पगे पल एकहु होत कदापि न न्यारे।
भीतर बाहर में अधिकार सियावर के सब प्रान पियारे॥
राम स्वरूप अगाध अनूप महामुद कोष पयोधि निहारे।
वासना और नहीं जिनके उर ऐसे सुकिंकर कोटि अपारे॥

या शोभा रघुनन्द की, अनत न कहूँ समाय।
यातें रसिकन के हिये, रघुवर ही सरसाय। ६१॥

शब्दार्थ:—अनत=दूसरी जगह, अन्य भगवत स्वरूपमें

भावार्थ :—ऊपर वर्णित राजमाधुरी विशिष्ट शोभा एकमात्र श्रीरघुवंश भूषणजू में ही है। दूसरे सगुण ब्रह्ममें नहीं मिलने की। यही कारण है कि श्रीअयोध्या कनकभवनविहारी-लालजूके मधुर उपासक रसिकोंके हृदयमें एकमात्र श्रीजानकी-रमणजू ही एकाधिकार करके विराजे हैं। उनके अतिरिक्त दूसरे नहीं रुचते।

❀ श्रीसियावरजू का रूपोत्कर्ष ❀

कृष्णचन्द्र ब्रजयोषिता, मोही गाय सुतान।
नहिं कछु रूप विशेषता, मृगिहु मोह सुनि गान ॥६२॥

शब्दार्थ :—योषिता (योषति पुमांसम्)=युवती सुन्दरी पुरुषों को मोहने वाली।

भावार्थ :—लीलापुरुषोत्तम मदनमोहन श्रीकृष्णचन्द्रजूने ब्रजसुन्दरियों को मोहित किया अवश्य, किन्तु यह मोहन प्रभाव उनके सौन्दर्य माधुय का नहीं था। यह तो उनके बंशी-विनि-सृत गान सौष्टवका प्रभाव था।

श्रीमद्भागवत महापुराण दशमस्कन्ध अध्याय २६, श्लोक ३,४ में पढ़ें।

······जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्।
निशम्य गीतं तदनङ्ग वर्धनं
ब्रजस्त्रियः कृष्ण गृहीत मनसाः।
आजग्मु रन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोल कुण्डलाः॥

अर्थात् शरदपूर्णिमाकी मनोरम रात्रिमें भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी बाँसुरीमें सुलोचनी ब्रज सुन्दरियों के मनको हरने वाला गान किया। उस कामरस बढ़ाने वाले गान को सुनकर ब्रजांगनाएँ दूरसे ही सुनकर जान गईं कि यह गान श्रीकृष्ण

का है। अतः गोपियोंका हृदय इनके प्रति आकृष्ट हो गया। सबकी सब वहाँ श्रीकृष्णके समीप आ जुटीं। यहाँ आनेका यत्न सबका भिन्न-२ था। एक दूसरे के यत्नको नहीं जान सकी। दौड़ती हुई आई थीं, अतः सबों के कर्णभूषण डोल रहे थे।

संगीत का मोहक और आकर्षक प्रभाव प्रसिद्ध है। कोई कुरूप व्यक्ति भी सुन्दर वेणु बजाता है तो पशुजाति की मृगी भी मोहित होकर उस वेणुवादक के पास आ जाती है। संगीत प्रिय मानवी क्यों न मोहित हो? अब आपही बताइये कि उपर्युक्त मोहक प्रभाव था गान का कि रूप का?

और सुनिये—

तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।
काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्॥

— वही- १०।२१।३

अर्थात् उन ब्रज-सुन्दरियों ने श्रीकृष्णका कामोत्पादक वेणु गीत सुना। उनमें से कोई कोई श्रीकृष्णके परोक्षमें अपनी सखी से उनकी चर्चा करने लगी। (गान सुनकर न कि रूप देखकर।)

मिथिलापुरकी तियनकौं, रघुवर मोहि सुभाय।
केवल रूप विशेषता, नहिं कछु युक्ति दिखाय॥६३॥

शब्दार्थ :—रघुवर=विश्वकोषमें रघु शब्दका अर्थ जीव कहा है, रघुवर जीवमात्र के अभिनव दूलह हैं।

रूप की परिभाषा श्रीभगवद्‌गुण दर्पण में लिखा है।

चुम्बकायःकण न्याये दूरादाकर्षको बलात्।

चक्षुषां स गुणो रूपं शानः स्मारशरावलेः॥

अर्थात् चुम्बक जैसे लौहकणोंको दूरहीसे बरवश खींच कर अपनेमें लिपका लेता है, उसी प्रकार दूरवर्ती नयनोंको भी आकर्षितकर अपनेमें लगा लेवे, वही रूप कहाता है। दूसरा प्रभाव रूपका है, काम बाणका प्रहार करना। मानो रूप कामबाणों को पिजाकर तेज करनेवाला शान होवे।

श्रीमैथिलसुन्दरियों को मोहित करना टेढ़ी खीर थी। इनसे अधिक अथवा समान त्रिलोकमें कोई सुन्दरी थी ही नहीं। अपनेसे कम रूपको देखकर मोहित नहीं हुआ जाता। देवलोक के रूप इनके आगे कैसे कांतिहीन था, जैसे पूर्णचन्द्रके सामने तारागण।

नगर नारिनर रूप निधाना।

सुघर 'सुधरम' सुसील सुजाना॥ १।३१४।६७

तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारी।

भये नखत जनु विधु उजिआरी॥

दूसरा कारण और था, श्रीमिथिलेशजी ब्रह्मज्ञानियोंके भी देशिक थे। "सहज विराग रूप मन मोरा" कहने वाले की प्रजा भी 'सुधरम' थी। इन्द्रीजीत सतियोंको मोहना हँसी खेल नहीं था। उनको भी मोह लेनेसे राघवरूप चराचर मोहन

बिश्वमोहनसे भी अधिक गौरवान्वित पदपर प्रतिष्ठित हुआ। स्मरण रहे कि श्रीकृष्णकी भांति इनने मोहन प्रयोग केलिये न तो गानकला का, न अन्य युक्तिका सहारा लिया था। सोरह आना निसोत प्रभाव था रूपका।

यद्यपि मोहीं योषिता, कृष्णचन्द्र छवि देखि।
तदपि न अनहोनी कछु, होनी ही जिय लेखि ॥६४॥

नारि मोह लखि पुरुष वर, पुरुष मोह लखि नारि।
तहाँ न अनहोनी कछू, कवि बुध कहत विचारि ॥६५॥

शब्दार्थ :—अनहोनी = न होने वाली, अलौकिक। होनी = लोकरीति।

भावार्थ :—श्रीकृष्णचन्द्रमाजू भी मोहन, मनमोहन, मदनमोहन कहाते हैं। हम मान लेते हैं कि इनने ब्रजबनिताओं को अपनी सुछविके प्रभावसेही मोह लिया था तो क्या हुआ? पुरुषको देखकर स्त्रीका मोहित होना कोई अलौकिक बात तो है नहीं, यह लोकरीति सर्वत्र देखी जाती हैं। स्त्री देखकर पुरुष मोहित होता है, पुरुषको देखकर स्त्री। कवि बुद्धिमान पुरुषोंकी दृष्टिमें स्त्रीमात्रको मोहनेसे रूपमें कोई विशेष विलक्षणता नही आती। सहज स्वाभाविकता है। साधारण लौकिक रूपमें भी यह प्रभाव है। ब्रह्मरूपमें लोकोत्तर चमत्कार अपेक्षित है। सो आप श्रीराममें देखिये।

होनी होनी होइ तहँ, अद्भुतता नहि जान।
अनहोनी तहँ होइ कछु, अद्भुत क्रिया बखान ॥६६॥

अनहोनी सोइ जानिये, पुरुष रूपनिधि देखि।
मोहय पुरुष वधुत्व करि, अद्भुतता सोइ लेखि।६७॥

सो गति दंडक विपिन मुनि, भइ रघुवरहि निहारि।
याते अद्भुत रूपश्री, रामहिको निरधारि ॥६८॥

भावार्थ :—जो बात लोकमें सहज सम्भव है, उतनाही ब्रह्मभी करके दिखादे, तो इसमें ब्रह्मोचित विलक्षणता क्या हुई? ब्रह्म अघटित घटना करके दिखादे, तो समझें कि यह ब्रह्मके अनुरूप अद्भुत कर्म हुआ।

रूपनिधान पुरुषोत्तमको देखकर प्राकृत मण्डलका पुरुष रूपधारी व्यक्ति मोहित हो जाय और चाहे कि मैं इनकी पत्नी बनकर इनका अंग-संग सुख प्राप्त करूँ, तो यह एक अद्भुत बात रूप चमत्कार की अवश्य माननी पड़ेगी।

श्रीराघवके तपस्वी वेशमें भूषण वसनहीन रूपको भी देखकर दण्डकारण्यके इन्द्रियजीत बीतराग परमहंसोंके मनमें उपर्युक्त बात आई। हम तपबलसे स्त्री रूपधारण करें। श्रीराघव के रमणीय रूपसे रमण करें।

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्य वासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिस्तत्र भोक्तुमैच्छत सुविग्रहम्॥

अब तो आपको निश्चय हुआ न कि अद्भुता एकमात्र श्रीरामरूपमें ही है।

अद्भुत रूप निहारिकै, सब जिय होत सुमोह।

विष तन ध्यावत पूतना, नेक न लयाई छोह ॥६८॥

शब्दार्थ :—यहाँ मोह तथा छोह एकही अर्थमें आये हैं। अर्थ है दयापूर्ण स्नेह।

भावार्थ :—अद्भुत रूपमें विशेषता एक यह भी है कि देखने वालोंमें से प्रत्येकके हृदयमें अद्भुत रूपके प्रति दयापूर्ण स्नेह हो जाता है। भयंकरसे भयंकर प्राणी भी उसका अनिष्ट नहीं करते।

जिनहि निरखि मग सापिनि बीछी।

तजहि विषम विष तामस तीछी ॥

को अस जीव जन्तु जग माहीं।

जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं ॥

अच्छा, आपके श्रीकृष्ण रूपमें भी वही स्नेहोत्पादक प्रभाव है, तो पूतना के लिये वह प्रभाव कहाँ गया? माँ बन-कर गई थी स्तनपान कराने। विषलिप्त स्तन पिलानेके समय उसने रूप-दर्शन वाला छोह दर्शाया नहीं। इसीसे तो कहते हैं कि श्रीरामरूप वाली अद्भुता श्रीकृष्णमें नहीं है। आप कहेंगे कि पूतना राक्षसी थी, राक्षसीमें कहाँ मोह-छोह? तो सूपनखा भी तो राक्षसी थी। श्रीरामरूपके प्रति उसे कैसे ममत्वपूर्ण स्नेह हुआ?

रिपु भगिनी पुनि राक्षसी, जाकर मनुज अहार।
मगन भई लखि राम छवि, करन चही भरतार ॥७०॥

भावार्थ :—रावण श्रीरघुनन्दनजू का वैरी है। ऐश्वर्य दृष्टिसे रावणवधके निमित्तही आपने मानव लोकमें अवतार लिया है। माधुर्य दृष्टिसे भी श्रीभुशुण्डि रामायणके अनुसार रावण आपके जन्मके पश्चात्हीसे आपके वधार्थ कपटी राक्षसों को भेजता रहता था, अतः प्राचीन वैरी है वह। शूर्पणखा उसीकी बहन है। उसको भी आपके प्रति वैरही होना चाहिये था। दूसरी बात यह है वह नर मांसभक्षी थी। मानवकेप्रति दया कैसी ? किन्तु आपकी सुछवि-दर्शन करतेही मोहित हो गई, और हो गई इतनी अनुरागिनी कि आपको अपना पतिही बनाने की ठानी। प्रस्ताव रखा कि मुझसे विवाह करलो। मेरी तुम्हारी जोड़ी खूब छनेगी। विधाताका ही विधान आ जुड़ा है।

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी।
यह संयोग विधि रचा बिचारी ॥

नाक कान काटे जानेपर भी, सूर्पणखाके हृदयमें उनका साँवला सलोना रूप प्रेमास्पद बनकर, घर बनाये बसा है। उनकी बीरता पर शूर्पणखा कायल है। रावणके पास सूचना देती हुई कहती है—

"शोभाधाम राम अस नामा। परमधीर धन्वी गुननाना ॥"

कहा—उस प्राणप्यारेका कोई कसूर है नहीं। फसादी है उसका छोटा भाई। "तासु अनुज काटे श्रुति नासा।"

खरदूषन आदिक सकल, मोहें राम निहारि।

लड़े सो निज इच्छा नहीं, निज विरत्व विचारि ।।७१।।

भावार्थ :—खर, दूषण, त्रिशिरा तथा उनकी चौदह हजार संख्यक राक्षसी सेना, श्रीरघुनाथजीकी रमणीय रूपराशि को देखकर मोहित हो गये। उनके प्रति इतनी प्रीति बढ़ी कि उनके विरुद्ध बाणप्रहार करते नहीं बना। सोचने लगे कि बहन की नाक कान काटे, तो काटने दो। इन मनमोहनको मारेंगे नहीं। श्रीरामचरितमानस ३।१६। का यह मार्मिक प्रसंग पढ़ने में बड़ा ही सुख होता है।

प्रभु विलोकि सर सकहि न डारी।

थकित भई रजनीचर धारी ॥

नाग असुर सुर नर मुनि जेते।

देखे जिते हते हम तेते ॥

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई।

देखी नहिं असि सुन्दरताई ॥

जद्यपि भगिनी किन्ह कुरूपा।

बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

प्रश्न यह होता है कि इनसे युद्ध किया ही क्यों ?

उत्तर यह है कि शूरवीर रणमें परपक्ष की ललकार नहीं सह सकते।

योद्धा मुकुटमणि श्रीरघुबीर की ललकार —

जौं न होइ बल घर फिरि जाहू ।

रिपु पर कृपा परम कदराई ॥

"सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ ।"

अतः लड़ने-भिड़ने की इच्छा नही होनेपर भी शौर्या-वेशमें आकर भिड़ गये ।

ऐसे रघुवर रूपनिधि, सो मोहे सिय देखि ।

पटतरता कहँ पाइये, अति अद्भुत छवि लेखि ॥६२॥

भावार्थः- चराचर विमोहन, पुरुषरमणीकरण श्रीअवधि-सुन्दर जब रिपुमनमोहन बन गये, तब तो आपकी रमणीयता में चार चाँद लग गये। परन्तु श्रीमैथिलीजूका सौन्दर्य तो आपसे भी कहीं अधिक सुन्दर है। श्रीबरवा रामायणमें श्रीगो-स्वामिपाद की उक्ति है—'गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह।

देखहु आपनि मूरति सिय की छाँह ॥'

श्रीजनकपुरके गिरिजाबागमें सर्वप्रथम आपको जब श्रीसियशोभाके दर्शन हुये तब तो—"सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ।" "भए बिलोचन चारु अचंचल ॥"

बिचारना चाहिये कि श्रीरामरूप अद्भुत है, तो श्रीसिया-रूप अति अद्भुत है। इनकी समता खोजना व्यर्थ है। खोजिये, मिलेगी नहीं ।

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई ।

छवि गृह दीपसिखा जनु बरई ॥

सब उपमा कवि रहे जुठारी ।

केहि पटतरौं विदेह कुमारी ॥

❁ श्रीराम लीला परत्व ❁

—: सोरठा :—

लीला अमित अपार, रासादिक सियराम की ।

यही प्रमाण उदार, एक मुनिहि सतकोटि रचि ॥७३॥

पुनि मुनि और अपार, विधि संकर सेषादि सब ।

निज निज मति अनुसार, गावत नित नव राम यस ॥७४॥

भावार्थ :—प्रस्तुत दोहेमें दिव्यदम्पति श्रीसीतारामजी की ललित लीलाओंमें 'रासादिक' शब्दसे श्रीरासलीलाको प्रधान कहकर, अन्य लीलाओंको अपेक्षाकृत अप्रधान सिद्ध किया ।

श्रीरसिकप्रकाश भक्तमालमें बाललीला, व्याहलीला, आखेटलीला, राजलीला को सीमाबद्ध सुखद कहकर श्रीरास-लीलाको (अमित) असीम सुखद बताया गया है ।

कवित्त ४८ पढ़िये :—

यद्यपि अनेक मम भक्त सुखदानी

मात पिता सुत मित्र दास भावमें प्रवीन हैं ।

तहाँ तहाँ बाल ब्याह आखेटक रनरोज

लीला रस भाव सुखसागर के मीन है।

उनहीं के भावमें मगन ह्वै कै राजै नित

मित सुख योग सबहुन हमैं दीन है॥

अमित प्रियाजू अतिहित रासलीला सुख

ताके बिन मेरो मन रहत मलीन है॥

केवल महर्षि वाल्मीकिनेही श्रीअवधविहारिणी विहारी-लालकी असंख्य लीलाओंका वर्णन किया है।

वाल्मीकिना च यत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्।
ब्रह्मणा चोदितं तच्च शतकोटि प्रविस्तरम॥

— मत्स्यपुराण।

श्रीरामचरित की अनन्तता इतनेहीसे प्रमाणित है। अन्यान्य मुनियोंने श्रीब्रह्माजी, भगवान शंकरजी तथा शेष, सरस्वती आदि वक्ताओंने वर्णन किया, सो तो अलग है। है किसी अन्य अवतारके इतने अनन्त अपार चरित? तभी तो—

राम अनन्त अनन्त गुन, अमित कथा विस्तार।
सुनि आश्चर्य न मानहीं, जिनके विमल विचार॥

निज निज मत मुनि हरिगुन गावहि।

निगम सेष सिव पार न पावहि॥

❀ श्रीराम-धाम परत्व ❀

अवधि सुपरतम धाम, नित्य सच्चिदानन्दमय।
जहाँ रमत सियराम, रासादिक लीला विविध ॥७५॥

भावार्थ :—यहाँ अवधि अयोध्या तथा सीमा दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। श्रीअयोध्या सभी भगवद्धामोंसे सर्वोपरि है। उनसे ऊपर कोई धाम है नहीं। श्रीसदाशिवसंहितामें शेष वेद सम्वाद रूपमें ऐसा कहा गया है।

तदूर्ध्वं तु परमंकान्तं महावैकुण्ठ संज्ञकम् ।
वासुदेवादयस्तत्र विहरन्ति स्वमायया ॥
तदूर्ध्वं स्वयं भाति गोलोकः प्रकृतेपरः ।
वाङमनो गोचरातीतं ज्योतिरूपः सनातनः ॥
तस्य मध्ये पुरं दिव्यं साकेतमिति संज्ञकम् ।
योषिद्रत्न मणिस्तम्भ प्रमदा गण सेवितम् ॥

अर्थात् अन्यान्य भगवद्धामोंसे ऊपर महावैकुण्ठ नामक श्रीवासुदेवादि चतुर्व्यूहं का धाम है। अपनी-अपनी शक्तियोंके सहित वहाँ बिहार करते हैं। उससे भी ऊपर प्रकृतिमंडलसे परे ज्योतिर्मय गोलोक है, जो मन, बुद्धिसे भी अगोचर है, सनातन है। गोलोक की राजधानी केन्द्रमें विराजमान श्रीसाकेत नामक धाम है। रमणीरत्नों, मणिस्तम्भोंसे परिसेवित है।

इस सच्चिदानन्दमयधाममें श्रीसीतारामजी नानाप्रकार की रासादि मधुर लीलाएँ करते हुये बिहार करते हैं।

श्रीवशिष्टसंहितामें रघुकुलगुरु श्रीवशिष्टजीने अपने शिष्य श्रीभारद्वाजजीसे कहा है कि श्रीअयोध्यानगरी नित्या है अर्थात् अविनाशिनी है, सच्चिदानन्द-स्वरूपा हैं। इन्हींके अंशांशसे वैकुण्ठ, गोलोकादि उत्पन्न होकर अपनी-अपनी जगह प्रतिष्ठित हैं।

यहाँ श्रीसरयू भी नित्या हैं। जलधाराके व्याजसे प्रेम-प्रवाह वहन करती हैं। इन्हीं श्रीसरयूके अंशसे विरजादि दिव्य सरिताएँ प्रगट हुई हैं।

अयोध्या नगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठा गोलोकादि प्रतिष्ठिताः॥
यत्र श्रीसरयू नित्या प्रेमवारि प्रवाहिनी।
यस्यांशांशेन संभूता विरजादि सरिद्वराः॥

सरितवरा जहँ सोह, श्रीसरयू पावनि परम्।
परानन्द संदोह, राजति जनु जल रूप धरि॥७६॥

भावार्थ :—उपर्युक्त वर्णित श्रीअवधधाममें सप्तपावनी नदी-शिरोमणि श्रीसरयूजी सुशोभित हो रही हैं। उनकी धारा के दर्शनोंसे अत्यधिक परमानन्दका अनुभव हृदयमें होता है। मालूम पड़ता है मानो परमानन्दका पुञ्जही जलके रूपमें साकार होकर शोभा सज रहा है।

राजत नील सुपद्म, सांजन सरजू नैन सोइ।
झाँइ परत मनिसद्म, सो जनु बहु भूषन सजे॥७७॥

शब्दार्थ :—पद्म=कमल । सांजन=अंजन, काजर सहित । सद्म=महल । झाँइ=प्रतिविम्ब, परिछाही ।

भावार्थ :—श्रीसरयूधारामें नीलकमल खिले हैं। वही मानो श्रीसरयूसुन्दरीके कजरारे नयन हैं। श्रीसरयू-प्रवाहमें किनारे स्थित मणिमय महलोंके प्रतिविम्बही मानो श्रीसरयू-रमणीके विविध अंग भूषण हैं।

लसत सिवार सुवार, सम्बर अम्बर सोहहीं।
अद्भुत रूप उदार, सरयू सरिता स्वामिनी ॥७८॥

शब्दार्थ :—सिवार=पानीमें लच्छोंकी तरह फैलनेवाला एक तृण। सुवार=सुन्दर केश। सम्बर (स+अम्बर) =नीले आकाश का प्रतिविम्ब । अम्बर=वस्त्र । उदार=श्रेष्ट ।

भावार्थ :—श्रीसरयूजलमें फैले हुये सिवारके लच्छेही श्रीसरयू रमणीके माथेके घुघुराले केश हैं। जलमें प्रतिविम्बित नीले आकाशही श्रीसरयूवधूटीके अंग वस्त्र हैं।

इस प्रकार सभी पावनी नदियोंकी स्वामिनी श्रीसरयू-महारानीका लोक-विलक्षण रूप अतिश्रेष्ट है।

भागीरथी, भानुकन्या, सिन्धु, सोन, महानद,
फलगो, सुगंडकी, औ गोमती महानी है।
कावेरीहूँ, कृष्णावेना, ताम्रवर्णी, तुङ्गभद्रा,
नर्मदा, गोदावरीहूँ, भरी पुण्य पानी है ॥

इन्हैं आदि नदी पंचशत 'रसरंगमणी'

वन्दैं पद सागरो बसिष्टसुता जानी हैं।

सोई नात मानी पूजै राम सनमानी, ऐसी

सरिताधिरानी श्रीसरयू महरानी हैं॥

द्रुम किनार सोइ छत्र, चँवर तरंग सुभ्राजहीं।

घोष दुन्दुभी अत्र, निसदिन अद्भुत बाजहीं॥७९॥

दुहूँ कूल मणिघट्ट, अट्ट सुउच्च विराजहीं।

निज निज तट्ट सुठट्ट, नरनारिन सोइ भृत्य बहु॥८०॥

शब्दार्थः—द्रुमकिनार=श्रीसरयूतटके वृक्ष। घोष=जल-धाराकी कलकल ध्वनि। अत्र=यहाँ। कूल=तट। अट्ट=अट्टालिका, कोठा। तट्ट=तट, किनारे। सुटट्ट=भीड़भाड़। भृत्य=सेवक, दास।

भावार्थ :—श्रीसरयू महारानीके साजसमाजका सावयव रूपक कहते हैं। श्रीसरयू तटपर दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे विशाल वृक्षोंकी प्रसरित शाखाएँ मानो श्रीसरयू महरानीके शिरपर छत्र फिरा रही हैं। धारामें तरंगें उठती हैं, वही मानो चँवर डुराया जा रहा है। यहाँ धाराकी प्रवाहध्वनि ही मानो दिनरात विलक्षण रूपसे बजने वाली इनकी विजयदुन्दुभी है। दोनों ओर के तटोंपर मणिमय घाट बँधे हैं, यही मानो श्रीसरयू महरानी के निवास वाली ऊँची अट्टालिका है। घाट-घाटपर स्नानार्थी,

दर्शनार्थी, जलार्थी नरनारियोंकी भीड़ जुटी है, वही मानो श्रीसरयू महारानी के दासदासी हैं।

गंगा जमुना आदि, नदी सकल जग पावनी।
और अमित प्रागादि, सबके इष्ट वसिष्टजा। ८१॥

शब्दार्थ :—प्रागादि=प्रयागराज आदि। वसिष्टजा= श्रीवशिष्ट पुत्री सरयूजी।

भावार्थ :—श्रीगंगा, श्रीयमुना आदि समस्त जगतको पालन करने वाली नदियाँ हैं। तथा श्रीप्रयाग आदि असंख्य तीर्थ स्थान हैं। इनसबोंके इष्ट श्रीसरयूजी हैं, क्योंकि श्रीभड्ङ्गि देवाचार्यजी कहते हैं कि यात्रियोंके पापभार वहन करने वाले सभी तीर्थ श्रीसरयूधारामें स्नानकर पावन बनते हैं। अतः आपका मंगल हो।

तीर्थानां यज्जले स्नानात् पापान्मुक्तिर्भवेदिह।
भवतात् सरयुदेव्यै तस्यै च मङ्गलं शुभम्॥

गङ्गा ज्ञानमयी गिरा, गिरिसुता पद्मालया भानुजा
कावेरी कलिपापतापशमनी शुद्धा तथा नर्मदा।
सेवन्ते तव पाद पङ्कजरजो ज्ञात्वा महिम्नः परं
त्वत्पादाम्बुजसेवया जगदघध्वंशे समर्थास्तुताः॥

— अनन्त श्रीस्वामी युगलानन्यशरणजी महाराज विरचित सरयू अष्टक से।

गिरा=सरस्वती नदी। गिरिसुता=कोई भी पहाड़ी नदी। पद्मालया=कमला। भानुजा=यमुना। (जगत्-।-अघ) जगदघ=संसारमें होने वाले पाप। महिम्नः परं=परम महिमा ज्ञात्वा=जानकर।

❀ श्रीरत्नाचल अर्थात् मणिपर्वत ❀

रत्नसिलोच्चय राज, जहँ अति अद्भुत तेज निधि।
बहु द्रुम कुंज बिराज, बोलत खग करि मधुर स्वर ॥८२॥

शब्दार्थ :—सिलोच्चय (शिलोच्चय)=पर्वत। रत्न-सिलोच्चय=रत्नाचल, मणिपर्वत। द्रुमकुंज=वृक्षोंकेही बने कुंज। तेजनिधि=प्रकाशपुंज।

भावार्थ :—श्रीकनकभवनसे दक्षिण ओर श्रीअशोकवन के अन्तर्गत रत्नाचल है (उत्तरमें मुक्ताचल, पूर्वमें शृङ्गाराचल तथा पश्चिम लीलाचल नामक पर्वत हैं) रंगबिरंगी मणियोंसे जटित होनेके कारण यह बिलक्षण प्रकाशोंके निधान हैं।

रत्नाचलकी तलहट्टीमें बहुतसे कुंज बने हैं। वृक्षोंकी शाखाओंको मोड़कर, कुंजकी दीवार, छत, खम्भे, द्वार, खिड़की आदि बने हैं। ऐसे कुँज द्रुमकुंज कहाते हैं। पर्वतोंपर तथा आसपासमें रागरागिनियोंके प्रतिरूप पक्षीगण सांस्कृतिक रीति से मधुर कलरव करते हुये गानकर रहे हैं।

❀ सोम स्रवण वट ❀

मनिगिरिके आसन्न, सोमस्रवण बट सुभग अति।
अचला जटित रतन्न, तहाँ हिंडोला कुंज बहु ॥८३॥

शब्दार्थ :—मनिगिरि = मणिपर्वत । आसन्न = समीप, सटे हुये । सोम = चन्द्रमा । स्रवण = चुआने वाला । बट = बरगद का पेड़ । सुभग = सुन्दर । अचला = भूमि ।

भावार्थ :—श्रीमणिपर्वतके समीपही सोमस्रवण नामक बटवृक्ष है । इसके पत्ते-पत्तेमें चन्द्रमाका प्रकाश भरा है तथा उनसे सोमरस टपकता रहता है। इसीसे गुणपरक इनका नाम है सोमस्रवण बट । यह बटवृक्ष अत्यन्त मनोरम (सुभग) तथा भोगैश्वर्य सम्पन्न है । बटके नीचेकी भूमि विविध रत्नोंसे जटित है, सर्थात् रंग-रंगके बेलबूटे आदि चित्राम बने हैं । इनके समीप बहुतसे हिंडोल कुंज हैं ।

ऐसे सोमस्रवणबट तो है श्रीअशोकवनकी केन्द्रीय रासस्थली, परन्तु रास की अवान्तर लीलामें जब झूलन लीलाकी अभिलाषा होती है, तो अनेक रूपोंसे प्रधानतः श्रीप्रियाजूके साथ-साथ दक्षिण नायक बनकर अपर-नायिकाओंके साथ झूला झूलते हैं । बहुतसे हिंडोलकुंजोंका यही अभिप्राय है ।

❀ श्रीअवध नगर का बाहरी परकोटा ❀

दुर्गम दुर्ग विराज, उच्च धवलता तासु अति ।
जनु चहुँ ओर सुभ्राज, सियरघुवर को विमल जस ॥८४॥

शब्दार्थः—दुर्गम = जिसके भीतर प्रवेश करना कठिन है। दुर्ग = किला, गढ़ । धवलता = सफेदी । सुभ्राज = सुशोभित ।

भावार्थ :—श्रीअयोध्यानगरके बाहर चारोओर स्फटिक मणि विरचित उच्च तथा समुज्ज्वल परकोटे बने हैं । इन परकोटे

के भीतर कुबिचारियोंका प्रवेश सम्भव नहीं। 'दुर्गगम्भीर परिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम् ।' श्रीवाल्मी० १।५।१६ ॥

इन परकोटोंके शुभ्रप्रकाश बहुत दूर तक फैले हैं, मानो श्रीमैथिलीरघुनन्दनजूका निर्मल सुयशही परकोटप्रकाशके व्याज से चहुँओर प्रसरित हो रहा हो।

दिव्य फटिकमय कोट, ओट ताकी जो रहहीं।
काल मृत्यु भय रहित, पाप परिताप न लहहीं ॥

— श्रीबड़ी ध्यानमञ्जरी ।

चहुँ गोपुर चहुँ मुक्ति, सेवत निज परिवार युत ।
कहों न कछु निज युक्ति, महिमा अवध सुविदित श्रुति॥८५

शब्दार्थ :—गोपुर=नगरका मुख्य द्वार । चहुँमुक्ति= सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य नामक चारो मुक्तियाँ परिवार=कर्म, योग, ज्ञान, उपासना, प्रपत्ति आदि । युक्ति= मनगढ़न्त बात । श्रुति=वेद ।

भावार्थ:—श्रीअवधनगरमें बाहरसे प्रवेश करनेके लिये पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तरसे एकएक चार मुख्य प्रवेश सिंहदरवाजे हैं । प्रत्येक द्वार पर चारोमेंसे एकएक मुक्ति अपने परिवार सहित द्वार-रक्षा रूपी सेवामें तत्पर है । मुक्तात्माही भीतर प्रवेशकर सकती हैं । पूज्य ग्रन्थकारका कहना है कि मैं कुछ कपोलकल्पित बात नहीं कहता । श्रीअयोध्याकी महिमा वेदोंमें भी प्रसिद्ध है ।

यहाँ स्थानाभावसे वेदोंमें उपलब्ध अनेक प्रमाण न दे-कर वेदार्थभूत भार्गवपुराणसे भगवान् नारायणके श्रीमुखवचन-मात्र उद्धृत किया जाता है ।

त्रिपाद्विभूतौ वैकुण्ठे विरजायाः परे तटे ।
या देवानां पूरयोध्या ह्यमृतेना वृतापुरी ॥

अर्थात् विरजापार नित्य भगवद्धाम त्रिपादविभूति अन्त-र्गत वैकुण्ठ स्थानोंमें (देवानां) मुक्तजीवोंका निवास अयोध्या नगर है । वह पुरी (वृता) रक्षित है (हि+अमृतेन) मुक्तियों से । यहाँ अमृत शब्द मुक्ति वाचक है ।

प्रजा बसत चहूँ फेर, मध्य नृपति मन्दिर विसद ।
तासु सुछवि हिय हेरि, विष्णु सदन फीको लगै ॥८६ ।

भावार्थ :—नगरके मध्यमें श्रीअयोध्या नरेन्द्र शिरोमणि जूका जीर्णताशीर्णता रहित दिव्य राजभवन है । श्रीअयोध्या राजसदनकी शोभा देखकर जीमें भगवान विष्णुका बैकुण्ठान्त-र्गत मणिमय भव्य भवन भी फीका लगता है । राजमहलके चतुर्दिक चारो वर्णोंकी प्रजाओंके निवास गृह हैं ।

सौध सप्तमें द्वार, अपवर्गादिक चारि यह ।
खड़े रहत चोपदार, और न कछु तहँ काज तेहि ॥८७॥

शब्दार्थ :—सौध (सुधा+अण्)= अमृतोपम सुख सम्पन्न राजमहल । अपवर्गादिक चारि=त्यागवैराग्य, योग, ज्ञान मोक्ष । चोपदार=द्वारपाल ।

भावार्थ :—सप्तावरणमय राजमहलके बाहरी अन्तिम वाले आवरण के चारो दिशावाले सिंहद्वारोंपर, क्रमशः वैराग्य योग, ज्ञान और मोक्ष द्वारपालके रूपमें पहरेपर खड़े रहते हैं। शुष्क होनेके कारण रसदेशके लिये ये सर्वथा अनुपयुक्त हैं। सरस सेवा इनसे क्या ली जाय ? सेवा प्राप्तिके लिये बहुत गिरगिराने पर द्वार रक्षामात्र का सेवा भार दिया गया है।

उमा रमा ब्रह्मानि, सिया महल सेवत सदा।

शारद चतुर सुजानि, नित कृत चरित सुगावही ॥८८॥

भावार्थ :—श्रीमैथिलीजूके राजमहलमें श्रीराघवेतर पुरुष का गम नहीं है। केवल महिलाएँ वहाँ की सेविकाएँ हैं। त्रिदेव पत्नियाँ, श्रीपार्वती, श्रीलक्ष्मी, श्रीसावित्री ये सभी महल में श्रीसिया ठकुरानी की परिचर्या करती हैं। श्रीसरस्वतीजी सेवा मर्मज्ञ (सुजानि हैं। वाक्‌चातुरी भी है इनमें। श्रीकनक-भवनकी नित्य-नित्य सुघटित ललित लीलाओंका ये गान करती हैं और गाती हैं (सु) सांस्कृतिक रीतिसे। रागलय तालबद्ध स्वरों में।

भारती करत गुनगान गुञ्ज वल्लकी कै

इन्दिरा सप्रेम सीस केसनि सँवारती।

धनद कुवेर की वधू लै पानिपल्लव में

मौर मीर टारनि कौं मंजु चौर ढारती ॥

॥ श्रीकनकभवन विहारिणी विहारिणौ विजयेते ॥

—: श्री :—

सिद्धान्त–मुक्तावली

रचयिता :—

रसिकाचार्य रत्न श्रीजनकराजकिशोरीशरणजी महाराज

उपनाम– श्रीरसिकअलिजी

टीकाकार :—

शत्रुहन शरण

'रसिकबिहारी' त्रिपुरारि की पियारी उमा
नित्य स्वर्न मन्दिर मैं स्वर्न दीप वारतीं।
कोटि कामदेव की रती लैकर मार्जनी कौ
जनकलड़ैती जू को आँगन बुहारतीं॥

वृन्दावन वैकुण्ठ सब, तिनकर अवध निदान।
अवध प्रभाके अंशते, होत सबै प्रभमान॥८६॥

शब्दार्थ :—वैकुण्ठ सब=पाँच वैकुण्ठ प्रसिद्ध हैं। १–क्षीरसिन्धु, २–रमावैकुण्ठ, ३-कारणवैण्ठ, ४–महावैकुण्ठ और ५–श्रीसाकेत। निदान=कारण। प्रभा=प्रकाश।

भावार्थ :–श्रीवृन्दाबनसे लेकर उपर्युक्त चारों वैकुण्ठों के उत्पन्नकर्त्ता श्रीअवध (साकेत) धाम हैं।

परमप्रकाशमय धाम श्रीअवधके प्रकाशांश पाकर सभी प्रकाशपूर्ण बने हैं।

वेद बीच विदित विभाग पाँच धाम नाम
क्षीरसिंधु प्रथम रमानिकेत जानिये।
कारन प्रसिद्ध सुवैकुण्ठ महा नाम तिमि
विरजाके पार अविकार धाम मानिये॥
अवध अखंड अदुतिय अंस पाँच थल
अमल प्रसंस हंस वदत प्रमानिये।

युगल अनन्य रामरहस ललाम धाम

समता न आन लोक भूलिहूँ के आनिये ॥

सुन्दर नारिन रूप धरि, यावत भगवत धाम ।

अवध युगल पद सेइ कै, होत रहित परिनाम ॥६०॥

शब्दार्थ :—परिनाम=अन्त, नाश ।

भावार्थ :—श्रीसाकार अयोध्यापुरी का ध्यान है । सभी मुक्तिपुरियोंकी स्वामिनी श्रीअयोध्या भगवती दिव्यमहारानी रूप में राजसिंहासनासीन हैं । शेष सभी पुरियाँ रमणी रूपधारण कर, छत्र, चँवर, व्यञ्जनादि सेवा सौज लिये आपकी परिचर्यामें समुपस्थित हैं । प्रलयान्तमें इनका भी नाश नहीं होता, क्योंकि अविनाशिनी अयोध्यापुरीकी चरण परिचर्या प्रभावसे ये भी अविनाशिनी हो गई हैं ।

मथुराद्याः सर्वपुर्यो ह्ययोध्यापुर दासिकाः ।
अयोध्यामेव सेवन्ते प्रलये प्रलयेऽपि च ॥

— श्रीराम नवरत्नसार संग्रह ।

अविनश्वरमेवैकमयोध्यापुरमद्भुतम् ।
तत्रैव रमते नाथ ह्यानन्दरस प्लावितः ॥

— श्रीशुक संहिता ।

कोसला प्रभाव परमेश ते अभेद देखि

सेवे सबलोक दिव्य भव्य गुन गाय कै ।

जेते तमपार थल विमल प्रयाग आदि
जोरे रहे कञ्ज कर किंकर कहाय कै ॥
कासी मधुपुरी हरिद्वार द्वारिका हू तिमि
कांची कमनीय त्यों अवन्तिका सुभाय कै ।
'युगल अनन्य' आठोयाम मदमान गत
जोहती हमेश औध सुमुख सोहाय कै ॥

अवध मोदके अंश को, अंश बसत गोलोक ।
ताके कोटिन अंश को, कोटिन सुरपति ओक ॥६१॥

शब्दार्थ :—मोद = आनन्द, सुगन्ध ।

भावार्थ :—श्रीअयोध्यानगरी सच्चिदानन्दमयी है, इनमें १-सदांश, २-चिदांश तथा ३-आनन्दांश इतने अधिक हैं कि इन्हें जो 'आनन्दसिन्धु सुखराशी' आदि कहनाभी थोड़ा लगता है । चिदांश ही प्रकाश है । ऊपरके दोहा ८६ में श्रीअवधके प्रकाशसे सब धामोंका प्रकाशमान होना कहा गया। इस दोहेमें श्रीअवधके आनन्दसे तथा सुगन्धसे गोलोक को आनन्द-सुगन्ध सम्पूर्ण होना बताते हैं, क्योंकि इन्हींके अंश है। गन्घ प्रकाश-विशिष्ट देवेन्द्रकी अमरावती तो अंशांश कण मात्र है ।

सतचित आनन्द तीनोंसे घनीभूत श्रीअयोध्याको कई स्थलोंमें कहा गया है—

सच्चिदघनानन्दमयीमयोध्यां श्रीरामरूपां शरणं प्रपद्ये ।
— रत्न मञ्जरी ।

अथ श्रीरामचन्द्रस्य यद्धाम प्रकृतेः परम् ।
सच्चिद्घन परानन्दं नित्यं साकेत संज्ञकम् ॥
यदंशवैभवा लोका वैकुंठाद्याः सनातनाः ॥
— वशिष्ट संहिता ।

यथा अवध मिथिला तथा, सुख सुषमा मरयाद ।
इनहि सदा उर धारिये, त्यादि सर्वौ इमिसाद ॥६२॥

शब्दार्थ :—सुषमा=शोभा । मरयाद (मर्याद)=सीमा इमि (सं०)=इस प्रकारके । साद (शाद फा०)=आनन्द ।

भावार्थ :—श्रीअयोध्याके सुख, शोभा, मर्यादाका जैसा वर्णन किया गया है, उतनीही सब वस्तु श्रीमिथिलाकी भी समझनी चाहिये । एकही सच्चिदानन्दमयी पुरीका द्विधा रूप है जो । तत्वतः अभेद है । अतः इन दोनोंका, या किसी एक का भी ध्यान हृदयमें सदैव धारण किये रहना चाहिये । इसप्रकार के अन्यान्य धामोंके सुख प्रलुब्ध करे तो उसे त्यागकर श्रीधामानन्य बने रहें ।

यथाऽयोध्यापुरी नित्या मिथलापि तथा स्मृता ।
सर्वैश्वर्य गुणैर्वापि नायोध्यातः पृथग्मताः ॥
— वृहद् विष्णु पुराणे ।

❀ आर्या छन्द ❀

यदिह मयोक्तं सर्वं विद्धिमतं तन्मारुतेश्च परमम् ।
सर्वेषां रसिकानाञ्च सीतारामार्पित चेतसाम् ॥६३॥

शब्दार्थः--यदिह (यत्+इह)=जो कुछ यहाँ। मयोक्तं (मया+उक्तं =मेरे द्वारा कहे गये हैं। विद्धि=जानना। तन्मारुतेश्च (तत्+मारुतेः+च) = वह सब श्रीहनुमत-लालजू का।

भावार्थ :--इस ग्रन्थके पूर्वार्द्ध में मैंने (श्रीरसिकअलि-जीने) जो कुछ कहा है, वह सभी परम सिद्धान्त श्रीहनुमत-लालजूका है तथा श्रीसीतारामको सदैव चित्तमें ध्यान धरने वाले रसिक महानुभावोंके भी हैं।

उत्तर भाग

❀ जीव ब्रह्म सम्बन्ध ❀

भूमिका :—अपना ब्रह्मसम्बन्ध बिचार करते समय देहात्मबुद्धिका त्याग करना आवश्यक है। अधिकांश लोग इस पाँचभौतिक घृणित अपावन हाड़ मांस वाले स्थूल शरीरकोही अपना स्वरूप मानकर, अज्ञानवश लौकिक सुखके साधन जुटाने मेंही अपने देवदुर्लभ मानवजीवनको व्यर्थ गँवा देते हैं। उन्हें स्थूल शरीरकी रचनापर बिचार करना चाहिये।

अचला अग्नि अकास जल, अरु पंचम पवमान।
इन करिकै जो रचित यह, थूल काय जिय मान ॥ १ ॥

शब्दार्थ :—अचला=पृथ्वी। पवमान=वायु। थूल-काय=स्थूल शरीर।

भावार्थ :—पृथ्वी (मिट्टी), अग्नि, आकाश, जल और पाँचवा पवन—इन पञ्चमहाभूतोंसे विरचित यह स्थूल शरीर है। अपने जीमें ऐसा बिचार करें।

यह जरामरण, रोगशोकधर्मा स्थूलशरीर चौबीस तत्त्वोंका बना है। पूज्य ग्रन्थकर्त्ताने यहाँ मोटामोटी प्रधान पाँच तत्त्वोंकेही नाम गिनाये हैं। उपलक्षणसे शेष उन्नीस तत्त्वोंको भी जान लेना चाहिये। वह है पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। १-हाथ २-पैर, ३-मुख, ४-मलद्वार और ५-मूत्रमार्ग। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ

हैं- १-आँख, २-नाक, ३-जीभ, ४-कान और ५-त्वचा। पंच तन्मात्राएँ- १-शब्द, २-रूप, ३ रस, ४-गन्ध और ५-स्पर्श। चार अन्तःकरण- १-मन, २-बुद्धि, ३-चित्त और ४-अहंकार।

इस मरणधर्मा स्थूलको हम मरनेपर यहीं छोड़कर चल देंगे। स्थूल देहाभिमानियोंको प्रधानतः विषय-वस्तुओंकाही ज्ञान बना रहता है। स्थूल देहका भान जाग्रत अवस्थामेंही बना रहता है। सोनेपर स्वप्नावस्थामें हम सूक्ष्म शरीरसे स्वप्न-कार्य करते हैं। सूक्ष्म शरीरकी रचनाउपकरण भी जान लीजिये।

पञ्चप्रान मन बुद्धि पुनि, दसहूँ इन्द्रि समेत।
सूक्ष्म अंग सो पंच विनु, दुख सुख साधन हेत॥ २॥

शब्दार्थ :— पञ्चप्रान=शरीरमें प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान नामक पाँच प्राणवायु हैं। सूक्ष्मअंग=सूक्ष्म शरीर। पञ्चविनु=पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से रहित।

भावार्थ :—सोनेपर हमारा स्थूल शरीर अपने घरमें विछावनपर ही पड़ा रहता है। हम दूर-दूर देशोंको तथा वहाँ के स्थित व्यक्तियोंसे व्यवहार वार्तालापकर आते हैं, वह कौन शरीर है ? वही सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीरमें पञ्चमहाभूत नहीं होते। ऊपर वर्णित पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ सूक्ष्म शरीरमें व्याप्त रहती हैं। चार अन्तःकरणोंमें केवल मन और बुद्धि—दो ही वहाँ क्रियमाण रहते हैं। स्वप्नके सुखदुखों का अनुभवभी यही सूक्ष्म शरीर करता है। देवताओंको सूक्ष्म

शरीरही मिलते हैं, परन्तु है यहभी नाशवान, मायारचित। हमारा शुद्ध जीवस्वरूप इससेभी भिन्न है।

प्रभु कि अविद्या मक्ति फुर, झूँठ कही नहिं जाय।

सो लखु कारनकाय सो, बद्ध न बंध सुभाय ॥ ३ ॥

भावार्थ :—श्रीजानकीजीवनजू प्रभु कहाते है, अतुलित सामर्थ्य है इनमें। इनकी शक्तिको परमप्रबल होनाही चाहिये। 'अतिसय प्रबल देव तव माया।' इस शक्तिका नाम है अविद्या। 'एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा ॥' फुर कहते हैं सत्य अर्थात् नित्य अविनाशीको। बौद्ध दर्शनमें इसे झूठा कहा गया है। परन्तु यह कर्ममूलक जगत् प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। इसमें किये गये कर्म अनन्तकालकेलिये बंधन रूप बन जाते हैं। तब इसे झूठ कैसे कहेंगे ? यह सत्य है। इस अविद्या शक्तिके प्रभावमें आकर जीव नानाप्रकारके जागतिक भोग प्राप्त करनेके मनोरथ करता है तथा मनोरथ पूर्तिके लिये भरसक कर्मभी करता है। इतने मनोरथ एक जन्ममें सिद्ध होना असम्भव है। अतः सभी मनोरथ अग्रिम जन्मोंके बीज बन जाते हैं। इस (मनोरथ) वासना–बीजका बना होता है कारण (काय) शरीर। इस कारण शरीरका स्वभाव है बद्धजीवोंको (मायामोहित प्राणियों को) जन्ममरणके जालमें बाँध रखना। ऐसा कारण शरीरभी हम नहीं हैं। अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित होनेमें कारण शरीर बाधक है। इसे प्रियतमके विरहाग्निमें जलाकर भस्मकर देना है।

राम मिलन विरहानल छाई ।
तब कारन सशरीर जरि जाई ॥

तब अपना शुद्ध जीवस्वरूप है कैसा ?

प्रकृती अरु सब तत्व तें, भिन्न जीव निज रूप ।
सो प्रभु सों नातो बिसरि, परचो मोह तम कूप ॥ ४ ॥

भावार्थ :—विशिष्टाद्वैत वेदान्तके मतसे माया, जीव और ब्रह्म ये तीनों तत्त्व पृथक्-पृथक् हैं । प्रकृति अर्थात् माया तथा इसके पच्चीस तत्त्वोंसे भिन्न हमारा अपना शुद्ध जीवस्वरूप है । इस मायादेशमें आकर हम मायाके साथ घुलमिलकर एकमेकसे प्रतीत होते हैं, परन्तु बिचारकर देखनेपर हम इससे सर्वथा भिन्न हैं । मुक्त होनेपर इसका तनकसाभी संसर्ग हमारे स्वरूपमें नहीं रहनेको ।

ब्रह्मसच्चिदानन्दसे सच्चिदानन्द जीवका अनादि सिद्ध नित्य अमिट सम्बन्ध है । मायाजन्य अज्ञानतावश हम अपने ब्रह्मसम्बन्धको भूल हो गये । परिणाम यह हुआ कि मोहान्धकारमय कूपमें पड़े हैं । कूआँ में गिरा हुआ व्यक्ति विना दूसरे समर्थकी सहायतासे निकल नहीं सकता ।

पुनि सोइ रसिकन संग करि, लहै यथारथ ज्ञान ।
नातो सिय रघुनन्दन सों, निज स्वरूप पहिचान ॥ ५ ॥

भावार्थ :—शास्त्रचिन्तनादि उपायोंसे प्राप्त ज्ञान संशय मिश्रित होता है । यथार्थ ज्ञान विशुद्ध ज्ञान होता है—संशय,

भ्रम आदिसे रहित। यहतो बीतराग रसिकोंके संगसे ही संभव है।

गरुड़ महाग्यानी गुन रासी।
हरि सेवक अति निकट निवासी॥
तेहि केहि हेतु काग सन जाई।
सुनी कथा मुनि निकर बिहाई॥

मुनि ज्ञानी तो थे, किन्तु रसिक नहीं थे। श्रीकागजी रसिक थे। कैसे? अजी, श्रीसीतारमणका भजन करने वाले ही तो रसिक हैं। रसिक भावसे, सम्बन्ध बलसे, प्रियतमको वशमें कर लेते हैं। श्रीकागजीका मत है।

भाव वस्य भगवान, सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान, भजिअ सदा सीता रमन॥१६२॥

रसिक सन्तोंमें दो लक्षण प्रमुख होते हैं। १- परम-वैराग्य, २-रसमय ब्रह्मकी रसरीतिसे उपासना करनेमें भाव-मग्न रहते हैं।

यावत् जगके भोग रोग सम त्यागेउ द्वंदा।
पिय प्यारी रससिंधु मगन नित रहइ अनन्दा॥
— श्रीअग्रदेवाचार्य।

यथार्थ ज्ञानके दो अंग हैं। पहला अपने शुद्ध जीव-स्वरूपको पहचानना, दूसरा श्रीमैथिलीरघुनन्दन युगलकिशोरसे अपने नित्य सम्बन्धका ज्ञान। दोनों मिलाकर एक अखण्ड ब्रह्म है। नाता दोनोंके साथ यथायोग्य होना चाहिये।

जानु जीव सावैव पुनि, ईश्वर हू सावैव ।
निरवैवी जो कहत तिन्ह, जान्यो नहि श्रुतिभव ॥ ६ ॥

शब्दार्थ :—सावैव (स+अवयव)=साकार । श्रुतिभव =वेदका तात्पर्य ।

भावार्थ :—अपने शुद्ध जीवस्वरूपका यथार्थ ज्ञान होने पर यह निस्सन्देह जान पड़ेगा कि जीव नित्य भगवद्धाममें जाकर भी नित्य साकार रूपसेही ब्रह्मकी सेवा परिचर्या करता है । सेव्य इष्ट ब्रह्मभी नित्य साकार ही हैं । कोई अद्वैतवादी वेदान्ती यदि ब्रह्मको निराकार कहता है तो जानना चाहिये कि बेचारे वेदान्तीको श्रुतिका तात्पर्य समझमें आया नहीं । शुष्क हृदय होनेसे जाननेके अधिकारी भी नहीं हैं । जहाँ श्रुति ब्रह्मको रूपरहित कहती है, वहाँ श्रुतिका तात्पर्य यह है कि जो विकारग्रस्त प्राकृतरूप तुम देखते हो, वैसा रूप ब्रह्मका नहीं है, उससे विलक्षण है—

चिदानन्दमय देह तुम्हारी ।
विगत विकार जान अधिकारी ॥

यथा ईश सियरामजू, द्विभुज मानुषाकार ।
नित्य सच्चिदानन्द घन, लीला अवधि उदार ॥ ७ ॥

तथा जीव तेहि अंस निज, द्विभुज मनुष्याकार ।
सच्चिद्रूप अनूप छवि, अधिकारी परिचार ॥ ८ ॥

भावार्थ :—पिछले भागके दोहा ५२में श्रीसीतारामजी-को कार्य-कारणोंसे परे ब्रह्मका परात्परतम रूप कहा गया है। उसी भावको पुनः यहाँ स्पष्ट करते हैं। ऐश्वर्य माधुर्य उभय-विभूतियोंसे परिपूर्ण नित्य अयोध्या विहारिणी बिहारी श्रीसीता-रामजी दो भुजावाले मनुष्यवत् आकार वाले हैं। उनमें एक-रस रहने वाला सदांश, चिदांश अर्थात् ज्ञानांश एवं आनन्दांश तीनों निरतिशय रूपसे परिपूर्ण हैं। घनका यही भाव है। वे नित्यहैं, श्रीअयोध्यामेंही उदारलीला करतेहैं। उदार इसलिये कि-

कहहि सुनहि अनुमोदन करहीं।

ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥

जिस प्रकार स्वयं ब्रह्म श्रीअयोध्याबिहारी द्विभुज मनुष्याकार हैं। उसी प्रकार जीवभी तो उन्हीं का अंश अर्थात भोग्यभूत है। अतः वहभी उन्हींके समान द्विभुज मनुष्याकार है। जीवभी एकरस रहने वाला सदांश युक्तहै तथा चिदांश अर्थात् ज्ञानांश संयुक्त भी है। आनन्दांश ब्रह्ममें निरतिशय हैं। जीवमें स्वल्प है। अतः सच्चिद्रूप कहा सच्चिदानन्द रूप नहीं। श्रीअयोध्या-नाथका भोग्य शुद्ध जीवकी सुछबिके समान छबि स्वर्ग, ब्रह्मलोक को कौन कहे किसी वैकुण्ठलोकमेंभी नहीं है। बड़ीध्यानमञ्जरी में इसकी बिशेष चर्चा है। अतः अनूप छबि कहा। जीवका अधिकार परिचार अर्थात् सेवा मात्रका है। श्रीयुगलकिशोरकी सरस सेवामेंही जीवको आनन्दकी पराकाष्ठा प्राप्त होती है।

❀ सम्बन्ध ज्ञानप्राप्त जीवका कर्त्तव्य ❀

यथारूप निज भाव करि, करै मानसी सेव।
प्राप्तिहुँमें तस पावहीं, रसिक जान यह भेव ॥ ६ ॥

भावार्थ :—ऊपरके दोहा ६, ८ में शुद्ध जीवस्वरूपको मनुष्याकार बताया गया, किन्तु वहाँ यह स्पष्ट नहीं किया गया कि वह स्त्री, या पुरुष, बालक या युवक, श्याम या गौर, कद का छोटा या बड़ा ? आत्मसम्बन्ध दर्पणमें पूज्य ग्रन्थकार भाव हीन जीवस्वरूपका वर्णन करते हैं—

"एतैस्त्रिभिः शरीरै विलक्षणो न ह्रस्वो, न दीर्घो।
स्थूलो न सूक्ष्मो न श्यामो न गौरो,
न स्त्री, न पुरुषो, न क्लीवः ॥
एवं प्रकारेण अलक्ष्यस्स्वयं प्रकाशः सच्चिदानन्द रूपः ॥"

ब्रह्म सम्बन्धका संस्कार करते समय दिव्यदेशद्रष्टा-रसिकगुरु जैसा आपका स्वरूप बतावें, वही आपका भाव शरीर है—"भावस्त्वत्र लौकिकानां इव सम्बन्धः ॥"

उसी सम्बन्धानुरूप स्वरूपमें आविष्ट होकर आप श्रीप्रिया-प्रियतमजूकी मानसिक सेवा करते रहिये। श्रद्धापूर्वक आप अपने स्वरूपका चिन्तन करते रहेंगे तो उसी स्वरूपसे श्रीयुगल-किशोरको प्राप्त करेंगे।

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीमुखबचन है कि अन्त-अन्त कर जिस भावका चिन्तन करतेहुये जीव शरीरको त्यागता है, उसी भावसे वह मुझे प्राप्त करता है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः ॥ ८.६ ॥

कारण यह है कि मानसिक सेवामें मन बुद्धि प्रियतम में आसक्त रहती है, तब उन्हें क्यों नहीं पावेगा ?

"मय्यार्पित मनोबुद्धि र्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।" ८ । ७

रसिकजन इस प्राप्ति वाले रहस्यको जानते हैं । जो अन्तर्जगतमें रमाही नहीं, वह बेचारा क्या जाने ?

दास दासि अरु सखि सखा, इनमें निज रुचि एक ।

नातो करि सियराम सों, सेवैं भाव विवेक ॥१०॥

शब्दार्थ :—भाव विवेक=सम्बन्ध ज्ञानपूर्वक ।

भावार्थ :—ऐसेतो ब्रह्मजीवके बीच "मोहि तोहि नातो अनेक मानिये जो भावै" है, परन्तु उपासना देशमें १-शान्त, २-दास्य, ३-सख्य, ४-वात्सल्य और ५-शृंगार, पाँच ही रस के सम्बन्ध सर्वमान्य हैं । यहाँ 'दासदासी' शब्दसे दास्यभाव, 'सखि' से शृंगार भाव तथा 'सखा' से सख्यरस सम्बन्ध तीन ही गिनाये गये हैं । सेव्य है श्री 'सियराम' युगलकिशोर । शान्त और वात्सल्यमें युगलात्मक सेवा नहीं बनती । अतः युगल सेवाके अनुरूप उपर्युक्त तीनोंमेंसे साधक अपनी रुचि एवं पूर्वसंस्कार परवश प्रवृत्ति विचारकर जिस भावमें मनमाने, उसी भावका सम्बन्ध सुयोग्य आचार्य द्वारा प्राप्तकर, सम्बन्ध ज्ञानपूर्वक सम्बन्धानुरूप गुरु उपदिष्ट रीतिसे श्रीयुगलमनभावन जूकी लाड़-प्यारपूर्वक मानसिक सेवा करे ।

श्रृंगाररसमें तो षटऋतु विहार भावना और भी सुंदर निखरती है।

होरी, रास, हिंडोलना, महलन अरू सिकार।
इन लीलन की भावना, करै भाव अनुसार ॥११॥

भावार्थः—वर्षविलासमें फागुनका होरीविलास, आश्विन का रासविलास, श्रावणका झूलासुख अधिक रसनीय है। दैनिक विलासमें रात्रिके शयनसे प्रातः उत्थापन तक महलके शयन विलास, आखेटक आदि आठो पहरके आह्निकविलास सभी अत्यन्त आनन्ददायक हैं। अपने आचार्यप्रदत्त सम्बन्ध भावसे उन-उन लीलाओंकी मानसिक भावना अर्थात् सेवा करे।

"भावना तद्रहस्ये चिन्तनम्"—आत्मसम्बन्ध दर्पणे।

वसै अवध मिथिलाथवा, त्यागि सकल जिय आस।
मिलिहैं सियरघुनन्द मोहि, अस करि दृढ़ विश्वास ॥१२॥

भावार्थ :—श्रीमिथिला, श्रीअवध ब्रह्मरूप हैं। इनके चिन्मय वातावरणमें भाव-भावनाकी अनायास सिद्धि हो जातीहै। अतः भावुकको चाहिये कि दोनोंमें जहाँ जी चाहे अखंडवास पूर्वक भावसिद्धिके लिये जुटे रहे। श्रीधामवास की बाधक है मिथ्या आशा। सगे-सम्बन्धियों की, सेवक-सतो की आशा, देहातकी जमीन-जायदाद की जीविकाके लिये आशा वही करते हैं, जिन्हें अपने विश्वम्भर इष्टदेवमें विश्वास नहीं है। भजन करनेवाले कभी भूखे नंगे नहीं रहते। करके आजमा लीजिये।

मोर दास कहाइ नर आसा।

करइ तो कहहु कहहु कहाँ विश्वासा ॥

जे लोलुप भये दास आसके, ते सबहीके चेरे।

प्रभु–विश्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥

— श्रीविनय १६८।४

इस साधकके मनमें दृढ़ विश्वास जम जाना चाहिये कि आश्रित-सुलभ परात्परतमब्रह्म श्रीसीतारामजी मुझे अवश्य मिलेंगे। मैं उनमें भाव करता हूँ, तो "भावस्य भगवान" हैं। क्यों न मिलेंगे ?

❀ शरणागति-स्वरूप ❀

पूजे नहि बहु देवता, विधि निषेध नहि कर्म।

शरण भरोसो एक दृढ़, यह शरणागति धर्म ॥१३॥

भावार्थ :—शरणागति सद्यः सिद्धि देने वाली है। शरणमें आतेही शरणागतवत्सल श्रीजानकीवल्लभलालजू झटसे शरणागतको बाँह पकड़कर अपना लेते हैं। श्रीसुग्रीव विभीषण आदि प्रमाण हैं, किन्तु शरणागतिनिर्वाहके लिये तीन शर्तें हैं। पहली यह है कि शरणार्थी अनन्य भावसे एकही इष्टदेवताकी उपासनामें समासक्त रहे। अन्य देवकी पूजा, ध्यान, दर्शन आदिसे परहेज रखे।

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।

को करि कोटिक कामना पूजै बहु देव।

तुलसिदास तेहि सेइये संकर जेहि सेव ॥१०७॥

श्रवननि और कथा नहि सुनिहौं रसना और न गैहौं।

रोकिहौ नैन विलोकत औरहि सीस ईस ही नैहौं।१०४।३

दूसरी शर्त यह है कि शरणार्थी विधि–निषेधात्मक कर्म मार्गको सर्वथा त्याग देवे। श्रीमद्भागवतमें महाराज निमिके पूछनेपर नववें योगीस्वर श्रीकरभाजनजी कहते हैं कि सर्वात्म–भावसे भगवच्छरणापन्न व्यक्तिको कर्म मार्गको त्यागही देना चाहिये। क्योंकि शरणागत जीव परसे देवताओं, ऋषियों, पितरों, प्राणियों, कुटुम्बियों और अतिथियोंके ऋण उतर जाते हैं। अपने शरण्यको छोड़ वह न तो किसी अन्यका परतन्त्र है, न सेवक, न बन्धनमें रहने वाला है।

देवर्षि भूताप्त नृणां पितृणां

न किङ्करो नायमृणी च राजन्।

सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं

गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥११।५।४१॥

तीसरी शर्त है शरणागतिमात्रसे हमारा सबकुछ बन जायगा। अतः सोरह आने उसी साधनपर निर्भर रहे, और उपाय अपने अभीष्ट सिद्धिकेलिये नहीं करे। यही शरणागति धर्म है।

ज्ञेयः शरणं रक्षितृ संज्ञा को सत एव।
स त्वां रक्षति सर्वदा, दाशरथी प्रभुरेव ॥१४॥

शब्दार्थ :—ज्ञेयः=जानना चाहिये। रक्षितृ=रक्षक। संज्ञा=नाम। सत=ठीक ठीक। एव=ही। स=वह। त्वां=तुमको। रक्षति=रक्षा करते हैं। दाशरथी=श्रीदशरथनन्दन। प्रभुः+एव=प्रभु ही। प्रभु=समर्थ।

भावार्थ :—शरण शब्द यथार्थमें रक्षा करने वालेकाही नाम है। सो सर्वजीवरक्षक परमसमर्थ श्रीदशरथकुमारही तुम्हारी सर्वदा रक्षा करते हैं, ऐसा जानो।

(सोरठा) प्रभुके शरणागतोपयोगी गुणगण

शरणागत सुखदानि, शरण्ये यानि गुणानि वै।
हृदये धारय तानि, मुख्यानीह वदाम्यहम् ॥१५॥

शब्दार्थ=शरण्ये=रक्षकमें। यानि=जितने। गुणानि (बहुवचन = गुणगण। वै=निश्चय। हृदये=हृदयमें। धारय=धारण करो। तानि=उन सबोंको। मुख्यानि+इह=यहाँ मुख्य मुख्य। वदामि+अहम्=मैं कहता हूँ।

भावार्थ :—अपने रक्षक प्रभु श्रीजानकीवल्लभलालजूमें जितने शरणागत-सुखदायक गुणगण हैं, उन्हें यत्नपूर्वक हृदय में धारण किये रहना। यहाँ कुछ प्रमुख गुणोंको मैं (श्रीग्रन्थ-कर्त्ता) कहता हूँ।

गुण गुणार्थ सियराम के, ताको करै विचार।
निज अयोग्यता शंक सब, मेटे भली प्रकार ॥१६॥

शब्दार्थ :—गुणार्थ=गुणोंका प्रयोजन ।

भावार्थ :—शरणागत जीवको चाहिये कि अपने शरण्य श्रीयुगलकिशोरजूके शरणागतोपयोगी गुणगण तथा उन गुणोंके प्रयोजनको चिन्तन करे, और हम शरणागतके योग्य नहीं हैं, हमारी रक्षा प्रभु कैसे करेंगे ? ऐसी शंकाको अच्छी तरहसे मिटा डाले ।

❀ वत्सलता ❀

वत्सलता सियराम की, ताकहँ प्रथमहि देखु ।
भक्षिव भोगै दोष कों, वत्सलता सोइ लेखु ॥१७॥

शब्दार्थ:—भक्षिव (भक्ष+इव)=भोज्य वस्तुकी भाँति ।

भावार्थ :—सर्वप्रथम प्रभुकी वत्सलता गुणका विचार करते हैं । वत्सका अर्थ है गौका नवीन जन्मा बछड़ा । बछड़ा गौके पेटसे निकलता है, शरीरमें कचड़ेको लपेटे । गौमाता उसे चाटकर साफकर बच्चेको निर्मल बना देती है । बछड़ेके अंगका कचड़ा यद्यपि गौकी भोजन-वस्तु नहीं है, परन्तु बच्चे की शुद्धिकेलिये माँ उसे भोजनकी भाँति चाट जाती है । उसी प्रकार नवीन शरणागत, प्रभुका नवजात बच्चा है । उसके सारे पाप दोष प्रभु गोमाताकी भाँति स्वयं शुद्धकर देते हैं ।

भक्तराज अर्जुनसे भी गीताचार्य भगवान् ने कहा हैं । तुम शरणमें आओ । मैं तुम्हारे सभी पापोंको सद्यः छुड़ा डालूंगा । चिन्ता न करना ।

सर्वा धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ १८।६६

पापी वाशुभ आतमा, अथवा वध की नीति।
ताहू पर दाया करै, आर्य्यन की यह रीति ॥१८॥

शब्दार्थ :—वाशुभ (वा + अशुभ) = अथवा कुलक्षण। आर्य्यन = सत्पुरुषों।

यही कह्यो श्रीजानकी, पवनसुतहि समुझाइ।
दोषवती सब राक्षसी, लीन्हीं ताहि बचाइ॥ १९ ॥

भावार्थ :—लंका विजयका सम्वाद लेकर, श्रीहनुमानजी लंका वाली अशोकवाटिकामें श्रीसियास्वामिनीजूके निकट जाकर कहते हैं—माताजी ! आप आज्ञा दें, तो आपको सताने वाली इन राक्षसियोंको मैं मार डालूँ। इसपर श्रीसियाठकुरानी ने जो उत्तर दिया, वह शरणागत चेतनोंको बहुतही सान्त्वना-दायक है। कहती हैं—बेटा ! कोई जीव भारीसे भारी पापी क्यों न हो, अथवा अमंगलदर्शी हो, अथवा उसके अपराधको विचारकर न्याय उसे प्राणदण्ड योग्यही ठहरावे, तौभी सत्पुरुषों की रीति तो यही है कि उन सबोंपर भी दयाही करे। हाय रे हाय ! कैसा कुत्सित स्वभाव है इसका ! दयनीय है दयनीय !! ऐसा कहकर उन राक्षसियोंको बचा लिया। श्रीवाल्मीयरामायणमें इस आशयका मूल श्लोक इस प्रकार पठित है—

पापानां वाशुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥६।११३।४५

पुनः विभीषण भेटके, समय कह्यो श्रीराम ।
ताको सुमिरन कीजिये, वत्सलताको धाम ॥२०॥
सुनु कपीस मम बानि यह, मित्र भाव करि कोय ।
आवै ताहि तजौं नहीं, यदपि दोष तेहि होय ॥२१॥

शब्दार्थ :—बानि = स्वभाव ।

भावार्थ :—श्रीप्रियाजूके वात्सल्यगुण परिचायक प्रसंग कहकर, अब श्रीराघवजूके वात्सल्यका नमूना देरहे हैं । श्रीवाल्मीकीयरामायणकी कथा है । प्रसंग है श्रीविभीषण शरणागतिका । श्रीसुग्रीवादि सचिवोंने श्रीविभीषणजीकी शरणस्वीकृतिका विरोध किया, तो आपने श्रीमुखसे अपने स्वभावकी स्पष्टोक्ति की ।

वानरेन्द्र सुग्रीवजी! आपने जो राजनीति सम्मत सुझाव दिया है, वह राजनीतिक विचारसे सर्वथा प्रशसनीय है, परन्तु मैं अपने स्वभावसे उसे चरितार्थ करनेमें असमर्थ हो रहा हूँ । मेरा शरणागतवत्सल स्वभाव कुछ और ही है । वह यह कि मित्रभावसे कोईभी व्यक्ति मेरी शरणमें आता है, तो उसमें प्रत्यक्ष दोष देखकर भी मैं उसे त्यागनेमें असमर्थ हो जाता है । मूलश्लोक इसप्रकार है—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ॥६।१८।३

वात्सल्य गुणनिधान शरणागत रक्षणसुजान श्रीजानकीजानजूके इस स्वभावका चिन्तनकर निश्चिन्त रहें । भवसिन्धुमें डूबनेसे अवश्य उबार लेंगे ।

पूर्व कृताग बिचारि निज, उपजे प्रभुकी संक।
वत्सलताको सुमिरि कै, करिये मनहि निसंक ॥२२॥

शब्दार्थ :— कृताग = किया हुआ पाप। संक = प्राप्तिमें सन्देह, भय।

भावार्थ :—शरणागत होनेके पहले जीवके सहजस्वभाव परवश जो अपनेसे मनसे, वाणीसे, कर्मसे कोटि-कोटि पाप बन गये हों, उन पापोंपर बिचारनेसे मनमें भय होने लगता है कि हमारे जैसे महान पापीको प्रभु कैसे स्वीकार करेंगे? ऐसी दशामें प्रभुके वत्सलता गुणको स्मरण करना चाहिये। शरणपाल दयालु प्रभु अपने वात्सल्य गुणसे हमारे जैसे गये-गुजरेको भी स्वीकार करते आये हैं। हमें क्यों न स्वीकार करेंगे? ऐसा समझकर मनको धैर्य देते हुये निर्भय हो जाना चाहिये।

❀ स्वामित्व गुण ❀

द्वितीय लखि स्वामित्व गुण, ताको अर्थ बिचार।
सबमें माने अपनपौ, सो स्वामित्व उदार ॥२३॥
ताको हिये निधाय कै, करिये संशय दूरि।
प्रभु सब काज सुधारिहैं, निज लखि करिहैं ऊरि ॥२४॥

शब्दार्थ :—स्वामी (सं० स्वामिन् = स्व + मिनि) अपना मानने वाला मालिक। निधाय = सुरक्षित रखकर। ऊरि = स्वीकार।

भावार्थ :—शरणागतोपयोगी सबसे प्रथम अर्थात् सर्व-श्रेष्ठ गुण है वात्सल्य। दूसरा दर्जा आता है स्वामित्व गुण-का। हमारे श्रीसीताकान्तजू परात्परतम ब्रह्म है। त्रिदेव भी आपके भृत्य हैं। कुम्भकरनने रावणसे कहा है—

कीन्हेउ प्रभु विरोध तेहि देवक। सिव विरंचि हरि जाके सेवक॥

सर्वेश्वर होनेके नाते आपकी ममता प्राणिमात्रपर बराबर है।

अखिल विश्व यह मोरि उपाया। सबपर मोरि बराबर दाया॥

सबको अपना मानकर सबका भरण-पोषण, सार-सम्हार करते रहते हैं। जब सबका बिगड़ा बनाते रहते हैं, तब मेरेको, तो अपना आश्रित जानकर वात्सल्यवश अवश्य स्वीकार करेंगे। इस स्वामित्व गुणको हृदयमें जोगाये रहें और अस्वीकृति बिषयक सशयको सर्वथा मिटा देवें।

❀ सौशिल्य ❀

तृतिय लखि सौसिल्य गुन, अति निकिष्ट किन होय।
प्रीतिविवस ऊरी करै, कहि सुशीलता सोय॥२५॥

शब्दार्थ :—निकिष्ट (निकृष्ट)=नीच। किन=क्यों न। ऊरी (ऊररी सं०)=अंगीकार।

भावार्थ :—सुशीलताकी परिभाषा करते हुये पं० वैद्य-नाथप्रसाद लिखते हैं—'दीनौ हीन मलीन अपि, घिन आवै जिहि देखि। सबहि आदरै मानदै, सो सौशिल्य विशेषि।'

तीसरे शरणागतोपयोगी गुण सौशिल्यका वर्णन करते हुये, कहते हैं कि प्रीतिरसके अपार पारावार श्रीअवधेशकुमार

सबप्रकारसे गये-गुजरेको भी अंगीकार कर लेते हैं। इसीसे आप शीलसिन्धु कहे जाते हैं।

सो प्रसिद्ध रघुनाथमें, भेटे भाल रु कीस।
पुनि गुह आदिक अन्य जन, दरसन जासु अनीस॥ २६॥

शब्दार्थ :—कीस = बानर। गुह = निषादराज। अनीस = यहाँ अनीससे अनिष्टका भाव है, अर्थात् अमंगल।

भावार्थ :—सौशिल्यगुण श्रीरघुवंशविभूषणलालमें जग-द्विख्यात है। जिन बानर-भालुओंको देख लेने मात्रसे अमंगल होता है. उन्हेंभी गले लगाया है। निषादराज गुह, कोल भिल्ल इसी कोटिके अन्य जनोंसे भी प्रेमपूर्वक मिले हैं तथा इन्हें अपनाया है। मुर्देका मांस खाने वाले रुधिरसे लथपथ गीध (जटायु) को भी गोदमें बैठाकर प्यार किया है। हद हो गई सुशीलता की! खोज आइये ऐसा शीलनिधान, कहीं न मिलेगा।

प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किये आपु समान।
तुलसी कहूँ न रामसे, साहिब सीलनिधान॥

निज निकिष्टता देखि सिय, राम मिलन सन्देह।
ताहि निवारन कीजिये, सुमिरि शील गुन येह॥ २७॥

भावार्थ :—कभी-कभी हम सोचते हैं कि हाड़-मांसके बने मलमूत्रसे भरे, अनेक पापोंसे जकड़े, इस नीच शरीरको परमपावन प्रभु कैसे शरणमें स्वीकार करेंगे? अपनी नीचता बिचारकर संदेह होने लगता है कि परात्परतमब्रह्म श्रीयुगल-

किशोर मैथिली रघुनन्दनजूको पानेके अधिकारी हम हैं नहीं, हमें नहीं मिलेंगे ।

उस सन्देह स्थलपर हमें शीलसिन्धु दीनबन्धु श्रीजानकी-जीवनजूके इस उपर्युक्त शीलगुणका स्मरण करना चाहिये । हम निधरक शरणापन्न हो जायँ । पापीसे पापीको भी 'सकृत प्रनाम किये अपनाए ।' 'देखि दोष कबहूँ न उर आने ॥' स्व-भाव वाले शीलनिधानजू हमें निश्चय अपनावेंगे । सन्देह दूर हुआ ।

❀ सौलभ्य ❀

लखु चतुर्थ सौलभ्य गुन, जाकरि अर्थ विचारि ।
दुराधर्ष पुनि सहजहि, मिलै सो सुलभ उदार ॥२८॥
यथा राम ब्रह्मादिकन, दुर्लभ कहि आम्नाय ।
सो भेटैं अति प्रीति करि, सबरी के घर जाय ॥२९॥
चक्रवर्ती नृपनन्दकी, यही सुलभता धारि ।
दुर्लभता को सकल उर, दीजे भले निवारि ॥३०॥

शब्दार्थः—दुराधर्ष=जिनके निकट पहुँचना दुर्लभ होय । सुलभ=सुगमता पूर्वक पाने योग्य । आम्नाय=वेद, सम्प्रदाय ।

भावार्थ :— चौथा गुण है सौलभ्य । इसके अर्थपर विचार करना चाहिये । जिसके निकट पहुँचना कठिनसे भी कठिन हो, वह सुगमतापूर्वक मिल जाय, वही महान सौलभ्य-गुण कहाता है । यह गुण श्रीराघवेन्द्रसरकारमें भरपूर है ।

वेद कहते हैं कि "महतो महीयान्" परात्परतम् ब्रह्म श्रीसाकेताधीशजू श्रीब्रह्मादि त्रिदेवोंकेलिये भी दुर्लभ हैं। "सिव बिरंचि हरि मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥" पर मिलती नही।

वही लोक वेदसे तिरस्कृत भीलनी शवरीजी से मिले, स्वयं उनके घरपर जाकर। योगीश्वरों मुनीश्वरोंको खोजनेपरभी नहीं मिलते। पर दीन शरणार्थी उन्हें खोजने नही जाता। वह स्वयं खोजकर उसके पास आ जाते हैं।

चक्रवर्तीन्द्र श्रीकौशलेशराजदुलारेजूके इसी सौलभ्य-गुणको स्मरणकर, मिलन वाली दुर्लभताकी शंकाको भलीप्रकार मिटा देना चाहिये।

❀ कारुण्य ❀

लखु पञ्चम कारुण्य गुन, तासु अर्थ अनुमान।
पर दुख लखि असहिष्नुता, सो करुना जियजान॥३१॥
यथा भवन सुख त्यागि वन, गमन किये रघुनन्द।
प्रभु रिषि व्याकुल देखिकै, हने निशाचर वृन्द॥३२॥
करुना गुनको सुमिरिकै, जियमें दृढ़ता आन।
भवज भीम दुख मेटिहैं, राम भानुकुल-भान॥३३॥

शब्दार्थः—असहिष्णुता = न सहन करना। हने = मारा भवज = जन्ममरण चक्रसे उत्पन्न। भीम = भयावना। भानुकुल = सूर्यवंश। भान = सूर्य। पर = आश्रित भक्त।

भावार्थ :—अब पाँचवा गुण कारुण्यपर विचार करते हैं। कारुण्य शब्दके अर्थको जानना चाहिये। शरणागत प्राणी का दुःख दयार्द्र प्रभु सह नहीं सकते। अपने मनमें कारुण्य गुणका स्वरूप जानना चाहिये। आश्रितोंका कष्ट मानो अग्नि हो, जो नवनीत कोमल प्रभुका हृदय द्रवितकर देता है। अत्यन्त कोमल हृदय होनेसे अश्रुपात करने लगते हैं। आर्तप्रपन्नकी रक्षामें इतनी त्वरा होती है कि प्रभु विकल होकर सोचने लगते हैं कि किस प्रकार, कितना शीघ्र आश्रित कष्टको हम मिटा देवें।

आश्रिताग्नि महिम्नो रक्षितु हृदयद्रवः।
अत्यन्त मृदुचित्तत्वमश्रुपातादि कृद् द्रवत्॥
कथं कुर्यां कदा कुर्यामाश्रितार्त्ति निवारणम्।
इतीच्छा दुःख दुःखित्वमार्त्तानां रक्षणत्वरा॥

— भगवद्गुण-दर्पणे।

दृष्टान्त देते हैं—राक्षसोंके उत्पातसे संत्रस्त देवमुनियों के दुःखसे करुणार्द्र होकर प्रभुने श्रीअयोध्याके भवनसुखको छोड़कर, बनवासका कष्ट स्वीकार किया।

अस्थि समूह देखि रघुराया।
पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाये।
सुनि रघुबीर नयन छल छाये॥

निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पनकीन्ह ।
सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।।७।६

ऋषियोंको व्याकुल देखकर राक्षस समूहको नष्ट किया। इस करुणा गुणका स्मरणकर हमें अपने हृदयमें दृढ़ विश्वास जमाना चाहिये कि संसृति चक्रसे उत्पन्न भयावने कष्टको सूर्य-वंशकोभी प्रकाशित करनेवाले सूर्य समान प्रभु श्रीराघवजू मिटा डालेंगे । सूर्यके सामने निराशाका अंधकार ?

❀ शक्ति गुण ❀

लखु षष्टम सो शक्ति गुन, ताकरि अर्थ विचार ।
अघटन घटना करि सकै, सो जिय शक्ति निधार ।।३४।।
सो प्रसिद्ध रघुनाथ में, अस्म तराये पाथ ।
मरकट वध्य अश्रय किये, विभिषन लंकानाथ ।।३५।।
नित्य परीकर मध्य निज, प्राप्ती को सन्देह ।
ताहि निवारन कीजिये, सुमिरि शक्ति गुन येह।।३६।।

शब्दार्थ :—अघटन=जिस कार्यका होना सम्भव नहीं। घटना=सो कर देवें । निधार (निर्धार)=निश्चित रूपसे धारण करना । अस्म (अश्म)=पत्थर । पाथ=जल । मर्कट =बन्दर, यहाँ श्रीसुग्रीवजी । वध्य=प्राणदंडके अपराधी । अश्रय (आश्रय)=शरणमें रखा । परीकर (परिकर)=अनु-चरी, सहचरी ।

भावार्थ :—अब छठे गुणपर विचार कीजिये । यह शक्ति गुण है। इसके अर्थपर विचार करना चाहिये । जो कार्य औरोंकेलिये असम्भव है, वह करडालनेकी सामर्थ्यको अपने हृदयमें निश्चितरूपसे शक्ति जानिये ।

शक्तिगुण श्रीरघुनाथजीमेंही प्रसिद्ध है। "जय राम जो तृनसे कुलिस कर, कुलिस ते कर तृन सही ॥" ६।८१ ॥ आपकी पराशक्तिका श्रुतिभी बखान करती है।

"परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते ।" यहाँ आपकी अघटन घटना परिचायिका शक्तिके तीन प्रसंग लिखते हैं । पत्थर तो जलमें स्वयंभी डूबता है, औरोंको भी साथ लेकर डुबा देता है। ऐसे पत्थरोंको सेतुबन्ध कालमें जलपर तैरा दिया।

श्रीरघुवीर प्रतापतें सिन्धु तरे पाषान ।
ते मतिमन्द जे राम तजि, भजहि जाइ प्रभु आन ॥ ६।३ ॥

सुग्रीवजी वध्य थे ।

जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली ।
फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति विभीषन केरी ॥

वालिने कन्यातुल्या अनुजपत्नीके प्रति कुविचार किया। तो सुग्रीव तथा विभीषणने मातृतुल्या अग्रजपत्नीके साथ गर्हित सहवास किया । वध्य तो ये दोनों भी थे, परन्तु श्रीराघवलाल ने ऐसे वध्य पातकीको भी अपना प्रपन्न मानकर रक्षाही नहीं

की, प्रत्युत् लोकमें उसे उच्चपदाधिकारी बनाकर, परलोकमें अपने नित्य परिकरमें सम्मिलितकर लिया। श्रीसुग्रीवजीको किष्किन्धा नरेश बनाया तथा श्रीविभीषणजीको लंकाधिपति। दिव्यविहार देशमें इन दोनोंके नित्य सखीस्वरूप रसग्रन्थोंमें प्रसिद्ध हैं। अनन्तशक्ति–सम्पन्न प्रभुकी शरणागति घोरसेघोर पातकी, दुराचारीको भी सद्यः साधु बना डालती है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्य भाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः··· ··· ··· ··· ··· ॥

— श्रीगीता ९।३०

नित्यविहारदेशके दिव्य रूप, गुण, दिव्य प्रेमसे परिपूर्ण कहाँ दिव्यदेशके नित्यसखीसमाज, कहाँ अपना दुर्गन्धमय स्थूल शरीर, कोटि–कोटि दुर्गुणोंसे भरा। उस रूपकी प्राप्ति हमें कैसे सम्भव है ? यह शंका श्रीअयोध्याविहारीलालजूके शक्तिगुणके अनुसन्धानसे निवृत हो जायगी। प्रभु अपनी शक्तिसे हमजैसे अयोग्यको सुयोग्य बनायेंगे। अपनेको शरणमें आत्मसमर्पण कर देना मात्र है।

❀ ज्ञान गुण ❀

सप्तम सिय रघुनन्दको, ज्ञान सो गुन हिय देखु।
ताको अर्थ बिचारि निज, चित्त सुभीति जु लेख ॥३७॥
सर्व देस सब काल सब, बस्तुक राम लहोइ।
भक्त दुखापह सुख करन, ज्ञान जानि जिय सोइ॥३८॥

ज्ञान शक्ति सियराम के, दोउ गुन उरमें धारु।
सर्वदेश सबकालमय, कहुँ जनि भीति विचारु ॥३६॥

शब्दार्थ :—ज्ञान=जानने पहिचानेकी क्षमता। हिय देखु=विचार करें। चित्तरूपी दीवारपर। लेखु=अंकित करें। लहोइ=प्राप्त है। दुखापह=(अपह=अपहर्त्ता, निवारण करने वाला) दुखोंको नाश करने वाले। भीति=भय, डर।

भावार्थः—श्रीमैथिलीरघुनन्दनजूके सातवाँ गुण है ज्ञान। हृदयमें विचारना चाहिये। उनके ज्ञानका अर्थ समझकर हृदय पटलपर अंकितकर लेना चाहिये। श्रीराघवलालजूको सप्तलोक ऊपर, पृथ्वीके नीचे तलातल आदि सातलोकोंकी सभी वस्तुओं की भूत, भविष्य वर्तमान कालीन समस्त जानकारी सदैव एक-रस बनी रहती है। "ज्ञान अखंड एक सीतावर।"

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—श्रीराघवजू! तीनों लोकोंकी कौनसी वस्तु है, जो आप नहीं जानते?

"अज्ञातं नास्ति ते किञ्चित् त्रिषु लोकेषु राघव।"

मुंडककी श्रुतिभी आपहीको सर्ववेत्ता सर्वज्ञ कहती है। "यः सर्वज्ञः सर्ववित्॥ १।१।६॥

अनन्तानन्त ब्रह्मांडोंके असख्य प्राणियोंमें प्रत्येक प्राणी के इतिहास अनादिकालसे जानते हैं, और भविष्यके अनन्त-काल व्यापी उसका भावी चरित्रभी आपसे छिपा नहीं है। ऐसी ज्ञानराशिका उपयोग आप करते हैं, शरणागत संरक्षणमें। किसी समयमें किसी देशका प्रपन्न चेतन संकटापन्न होतेही आप

अपनी सर्वज्ञतासे जान लेते और उसी समय संकट मिटा देते हैं। शरणागतोंका योगक्षेम वहन करते हुये उन्हें अनेक प्रकार के सुख देते हैं।

इस ज्ञान गुणका स्वरूप हृदयमें समझना चाहिये। अपने ज्ञान और शक्ति दोनोके द्वारा प्रभु हम शरणागतोंकी सर्वत्र सर्वदा रक्षा करते रहेंगे। ऐसा समझकर उनकी शरण के भरोसे कहीं भी भय कभी नहीं करना चाहिये।

❀ दया गुण ❀

सात सार्थ बरनन करे, दया सो अष्टम लेखि।
करिहैं करु विश्वास दृढ़ दीन दुखित तोहि देखि ॥४०॥
हेतु रहित परदुख लखै, चित्त दुखित जेहि होय।
पुनि प्रहर्ण इच्छा चले, दया जानि जिय सोय ॥४१॥
असुर बधे मुनि अस्थि लखि, दुखित भये रघुनाथ।
प्रन कीन्हों अब मारिहौं, कुटुम सहित दसमाथ ॥४२॥

शब्दार्थ :— प्रहर्ण (प्रहरण = अच्छीप्रकारसे दुख हर लेने की। दसमाथ = रावण।

भावार्थ :—ऊपर सात गुणोंके अर्थ सहित वर्णनकर चुके। अब दया गुणका विवेचन करेंगे। इसे आठवाँ गुण समझना। दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि दयासिन्धु श्रीकौशल-किशोरजू आपको भवरोगसे दीन दुखी देखकर आप पर दया करेंगे ही।

अब दया गुणका अर्थ लिखते हैं। दूसरोंके दुख देख कर चित्त दुखित हो जाय, और निस्स्वार्थ भावसे उसके दुख मिटानेकी इच्छासे दुखीके पास जाय। प्रभुके इस गुणको अपने जीमें दया समझना चाहिये। यथा—राक्षसोंके हाथोंसे मारकर खालिये गये मुनिगणोंकी अस्थियोंका ढेर देखकर श्रीरघुनाथजी दुखी हो गये, और प्रतीज्ञा की कि परिजन पुरजन सहित रावण को मार डालूँगा।

दया शब्द निष्पन्न होता है देङ् धातुसे। देङ् का अर्थ है पालन करना। श्रीविश्वम्भर प्रभुमें यह गुण स्वाभाविकरूप से नित्य निवास करता है और सो भी निस्स्वार्थ भावसे। यह बात वेदविदित है।

पालन देङ् धात्वर्थो निर्निमित्तं हरेर्गुणः।
दयाख्यः श्रुति विख्यातो नित्यो ह्येष स्वरूपतः॥

— श्रीभगवद्गुण-दर्पणे।

इसी न्यायसे श्रीमुख बचन है—

सभी प्राणी मेरे उत्पन्न किये हुये हैं, सभी प्यारे हैं। सबोंपर मेरी समानरूपसे दया है, परन्तु जो जितने अधिक प्यारे हैं, उनपर उतनाही अधिक दया है। विज्ञानी मुनिपर अति दया। शरणागत तो मुनिसे भी अधिक प्यारे हैं। अतः उनपर निरतिशय दया होना योग्यही हैं।

अखिल विश्व यह मोरि उपाया।
सब पर मोहि बराबरि दाया॥

······ग्यानिहुँ ते अति प्रिय बिज्ञानी ।

अस्थि समूह देखि रघुराया ।

पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥

अतः —

निसिचर निकर सकल मुनि खाये ।

सुनि रघुनाथ नयन जल छाये ॥

(मुनियोंसे)—

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा ।

जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥

शरणागत वत्सल आप पर विशेष दयापूर्वक ढले हैं । क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हैं, जी ?

❀ कृतज्ञता गुण ❀

कृष्णिक सम कृत भक्त गुन, कृष्ण धरौ तिहि मान ।

मानव सोइ कृतज्ञता, कवि जन करत बखान ॥४३॥

नाथ अचल कियो लंक को, माथ नवावत देखि ।

वेद सो गावत गाथ रघुनाथ कृतज्ञ विशेषि ॥४४॥

अस कृतज्ञता देखि कै, शरण सुधारिये राम ।

जन करनी इच्छत नहीं, सब बिधि पूरन काम ॥४५॥

शब्दार्थ :—कृष्णिक=राई । कृष्णधरौ=श्रीगिरिधरजू ने गोवर्द्धन नामक पहाड़ उठाया था । नाथ=राजा । इच्छत (ईच्छ सं०)=ढूढ़ना, परवा करना ।

भावार्थ :—अपने आश्रितोंके राई समान स्वल्पगुणको पर्वतके समान महान मानते हैं।

नाहिन और कोउ सरन लायक दूजो

......श्रीरघुपति सम विपति निवारन।

जन गुन अलप गनत सुमेरु करि

अवगुन कोटि विलोकि विसारन॥

— श्रीविनय० २०६।

कविजन इसीको कृतज्ञता कहकर वर्णन करते हैं। गौतमीतन्त्रका कहना है कि कोई तुलसीका एक पत्ता या एक चुल्लू जल मात्रसे आपकी पूजा करदे, तो भक्तवत्सल राघवजू उन भक्तोंके हाथ अपनेको बेंच देते हैं।

तुलसी दल मात्रेण, जलस्य चुलुकेन वा।

विक्रीणीते स्वात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥

श्रीविभीषणजी कोई भेट–पूजा लेकर तो आये नहीं थे। सेवामें वश इतनाही किया कि आपके सामने माथा झुकाकर प्रणाम मात्रकर लिया। "सकृत प्रनाम किये अपनाये।" उन्हें लंकाका राज्य कल्पभरके लिये अचल दे दिया। इस प्रकारके आपकी कृतज्ञताके अनेक दृष्टान्त हैं। इसीपर वेद कहते हैं, कि सभी भगवदवतारोंमें श्रीराघवजूमें अपेक्षाकृत सर्वाधिक कृतज्ञता है। आपकी ऐसी कृतज्ञता देखकर, आपही की शरण ग्रहण करनी चाहिये, क्योंकि आप पूर्णकाम हैं। जीव क्या

देगा आपको? आप शरणागतकी करणीको खोजते नहीं। विना बदलेकी अपेक्षा किये, अपने मनसे, किये गये स्वल्प सेवापर रीझकर उसके ऋणीहो जाते हैं। बलिहारी ऐसी कृतज्ञता की !

❀ बल गुण ❀

दसमें बल गुन देखु अब, सो पुनि षष्ट प्रकार ।
आतम सुमस्त्र सुबन्धु रथ, मति विद्या दस चार ॥४६॥
दर्प दलन सब नृपनको, शिव कोदण्ड चढ़ाइ ।
वरमाला उर धारि तहँ, आतम बल कवि गाइ ॥४७॥
सस्त्र बलाधिक जान जहँ, हते सहस दस चारि ।
औरौ जहँ जस योग जहँ, सुमती लेइ विचारि ॥४८॥
संगर रंगमही हतौ, दसमुख परिकर युक्त ।
सो बन्धूबल जानिये, औरो जहँ जस उक्त ॥४९॥
सभा समीना आदि बहु दान करत रघुनन्द ।
सुरनायक सतकोटि सम भोग महा सुख कंद ॥५०॥
सो रथ बल जिय जानि पुनि मतिबल ब्रह्म सभासु ।
विद्या कौसिक दै सकल यज्ञ रखाथो तासु ॥५१॥

शब्दार्थ :—बल=कठिन कार्य करते रहनेपरभी थकता नहीं। "क्रियायामस्य गुर्व्यां तु खेदाभावो बलं गुणः।" (भगवद्गुण दर्पणे)। सहस दसचार=चौदह हजार सेना सहित खर दूषण। कोदण्ड=धनुष। संगर=संग्राम, युद्ध। रंगमही

=रणभूमि। परिकर युक्त=१- बानरी सेना सहित, २-रावण की राक्षसी सेना। उक्त=कहा गया गया है। समा=समय समयपर। समीना (फा०)=मूल्यवान वस्तु। सुरनायक=देवेन्द्र। रय=प्रताप।

भावार्थ:—अब दशवें गुणका वर्णन करते हैं—यह बल-गुण है, यह छः प्रकारके हैं। १- आत्मबल, २- शस्त्रबल। ३ बन्धुबल,४-प्रतापबल,५-बुद्धिबल और ६-चौदहोंविद्याका बल।

१-आत्म बलका दृष्टान्त है—श्रीजनकपुरकी रंगभूमिमें श्रीशंकरपिनाकको सहजही चढ़ाकर सभी शूरवीर नृपतियोंका अभिमान मिटा दिया। त्रिभुवन विजय सूचक श्रीमैथिलीजूके करकञ्जसे वरमाला हृदयमें पहन ली। इसी बलको विशेषज्ञों (कवियों) ने आत्मबल कहकर बखान किया है।

२-शस्त्र बल—कहाँ चौदह हजार खरदूषणादि राक्षसी सेनाके असंख्य अस्त्र-शस्त्र आप पर बौछार किये जा रहे हैं, कहाँ आप अकेले उनके अस्त्र-शस्त्रोंको अपने बाणोंसे खण्डित करते हुये उन्हें एकएककर मार गिराया। यह आपका शस्त्रबल है। शस्त्रबलके और भी दृष्टान्त श्रीरामायणमें कहे गये हैं—सुमति सज्जन उन स्थानोंके प्रसंग पढ़कर स्वयं बिचार करलें।

३-बन्धुबल—लंकाकी रणभूमिमें असंख्य सैन्य सहित रावणको वानरी सेनाकी सहायतासे मार दिया, यह आपका बन्धुबल है। औरभी श्रीरामायणमें जैसे कहे गये हैं, उन्हें भी बन्धुबलमें गिनतीकर लेनी चाहिये।

४– समय-समयपर असंख्य याचकोंको नानाप्रकारकी बहुमूल्य वस्तुओंका उनकी आवश्यकतानुसार दान देते रहते हैं, तथा इन्द्रसे भी अनन्तगुणा अनन्त नायिकाओंके सहित बिहार करते रहते हैं। उन रमणियोंके लिये आप महान भोग सुखके रस बरसानेवाले श्यामजलद (कंद) हैं। यह आपका प्रताप बल हुआ।

५– बुद्धिबल—मुनिगणोंकी गोष्ठी जब ब्रह्मविचार करने लगती है, वहाँ अपनी बुद्धिसे आप निगूढ़ रहस्योंकी ग्रन्थि सहजही खोल देते हैं। बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी आपकी पैनी बुद्धि देखकर चकित रह जाते हैं। इसे प्रत्युत्पन्नमति कहते हैं।

६– विद्याबल—श्रीविश्वामित्रजीने आपको बला-अति-बला नामक विद्या दी, वहतो आपका नरनाट्य मात्र था। आप स्वतः चौदह विद्याके निधान हैं।

तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही।
विद्यानिधि कहँ विद्या दीन्ही॥

उसी विद्याके बलसे श्रीविश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाकी।

❀ वीर्य गुण ❀

अति कराल शंकर धनुष, पचि हारे भूपाल।
सो गज पंकजनाल इव, तोरयो श्रीरघुलाल॥५२॥
अत्र विचित्र विचारिये, महावीर्य रघुनन्द।

श्रीवाल्मीकीय रामायणमें श्रीराघवजूने उत्तेजनामें आ-कर परशुरामजीसे कहा—मेरे तेजका आप तिरस्कार करते हैं। आज मेरा पराक्रम देख लीजिये। ऐसा कहकर उनके हाथसे साङ्ग धनुष एवं बाण सहजहीमें छीन लिया। श्रीपरशुरामजीने मुहताकते हुये अपना सारा तेज गँवा दिया।

अवजानासि मे तेजः पश्यमेऽद्य पराक्रमम्।
इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य वरायुधं
शरंच प्रतिजग्राह हस्ताल्लघु पराक्रमः ॥१.७६।३,४॥

❀ माधुर्य गुण ❀

लखि अद्भुत मुख चन्द्रमा, मिथिलापुरकी बाल।
नैन तृप्त नहि नेकहूँ, पलकन मानत साल ॥५४॥
इत अतीव माधुर्य पुनि, कह्यो मुनीशन गाय ॥

शब्दार्थ :—बाल=नवयौवना सुन्दरी। साल=पीड़ा। माधुर्य=नवायमान रूपशोभा।

भावार्थ :—श्रीअवधेशनन्दन लाडिलेलालजूके श्रीमुखको चन्द्रमासे उपमितकर, बताया कि यह अतीव आह्लादवर्धक प्रिय-दर्शन है। आकाश चन्द्र दिनमें मलीन हो जाता है। इनमें दिनमें शोभाका निखार और सरस हो जाता है, अतः अद्भुत चन्द्र है श्रीमुखमंडल। बालास्वरूपा अनूपरूपा जब श्रीमैथिलीजू की दृष्टि इनपर पड़ी, तो रूपामृत पान करते करते तृप्ति नहीं हो रही है 'अद्भुत छविकी माधुरी छिन छिन औरहि और॥'

पलक गिरनेपर दर्शनव्यवधान हो जाता है। अतः पलक गिरना भी पीड़ादायक हो गया।

देखि रूप लोचन ललचाने।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति छबि देखे।
पलकन्हिहु परिहरे निमेषे॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी।
सरद ससिहि जिमि चितव चकोरी॥

उसी भाँतिसे नाना खगमृगगणभी आपकी माधुरी पान कर उन्मत्त हो रहे हैं और पलक गिरानेकी सुधि नही है।

तथैव नाना खगाः मृगाश्च माधुर्य मत्ताः सखि! निर्निमेषाः।
— श्रीमाधुर्यकेलि कादम्बिनी।

यहाँ श्रीजानकीकान्तजूके रूपमें निरतिशय माधुरी है। चरित वक्ता मुनीश्वरोंने गाया है।

❀ आर्जव ❀

भयो कुतुक फुलवाइ जस, आर्जव हिया दिखाय॥५५॥

शब्दार्थः— कुतुक = विनोदपूर्ण उत्कंठा। आर्जव = सरलता

भावार्थ :—श्रीजनकपुरके गिरजाबागमें श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजूसे प्रथम मिलन हुआ। इससे उनके पाणिग्रहण विषयक प्रबल उत्कंठा जगी। यह युवक-युवती सम्बन्धी गोप्य

वार्ता गुरुजनोंसे नहीं कही जाती, परन्तु श्रीअवधसुन्दरजू ऐसे सरल स्वभावके हैं कि फुलवारी वाली सारी घटना गुरु श्रीविश्वामित्रजूसे कह सुनायी। मनमें छलकपट होता, तो छिपता भी। यह आपका आर्जव-गुण है।

हृदय सराहत सीय लुनाई।
गुरु समीप गवने दोउ भाई॥
राम कहा सब कौसिक पाहीं।
सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥

❀ गुण उपसंहार ❀

सप्तसिन्धु सीकरन को, क्रमते गनै जु कोइ।
ताहूँ सों सियरामके, गुनकी मिती न होइ॥५६॥

शब्दार्थ:—सीकरन = जलकण। मिती = गिनतीका अंत।

भावार्थ:—कोई ऐसा चतुर गणक हो, जो सातों समुद्र के जलकणोंको एक-एक कर गिन डाले। उस गणकसे भी कहा जाय कि आप कृपया श्रीसीतारामजूके अनन्तगुणगणोंकी गिनती कर दीजिये, तो वह भी गिनकर पार न पावेंगे।

राम अनन्त अनन्त गुनानी।
जन्म कर्म अनन्त नामानी॥
जलसीकर महि रज गनि जाहीं।
रघुपति चरित न बरनि सिराहीं॥
—७।५२।३,४

❀ उपासना प्रसंग ❀

गुन लच्छन दरशन कहे, जहाँ यथा उपयोग।
अब उपासना अंग सुनु, जाकरि मिटै प्रयोग ॥५७॥
उपदेष्टा निष्टा पुनी, रामभक्त में आनु।
धनुषादिक संस्कार में, तिहूँ विशेषता जानु ॥५८॥
गति अनन्यता धारणा, षट परत्व माधुर्य।
तासु उक्ति अरु युक्ति बहु, तामें अति चातुर्य ॥५९॥
सात अंग यह मुख्य जिय, लखु उपासना केर।
औरौ कहे अनेकसो, पूर्व भागमें हेर ॥६०॥

शब्दार्थ :—दरशन=परिचायक अर्थ। उपयोग=लाभ। प्रयोग=तांत्रिक साधन। उपदेष्टा=दीक्षागुरु। निष्टा=टिकाऊ श्रद्धा भक्ति। धनुषादिक=पञ्चसंस्कार। तिहूँ=उनमें भी। धारणा=धारण करना। षट परत्व=अपने इष्टमें सर्वाधिक, १-ज्ञान, २-शक्ति, ३-बल, ४-ऐश्वर्य, ५-वीर्य और ६-तेजका परिमाण मानना। माधुर्य=भूमंडलके नरजाति समान लीला। उक्ति=वचनके द्वारा मनोभाव प्रगट करनेकी शक्ति। युक्ति=कथनढंग। चातुर्य=कुशलता, प्रवीणता। पूर्वभाग=इसी ग्रन्थ के पहले भागमें। हेर=देख लीजिये।

भावार्थ :—ऊपर श्रीजानकीरमणलालजूके कुछ दिव्य-गुणगण कहे गये। उनके लक्षण, अर्थ, तथा शरणागतोंकेलिये

उन गुणोंके स्मरणसे कहाँ कैसा लाभ होगा–यह सबकुछ साथ-साथ कह दिये गये ।

अब उपासनाके सात अंग गिना रहे हैं। इनको समझ लेनेसे अधोगति देनेवाले तांत्रिक साधनोंमें रुचि मिट जायगी। वाममार्गी कौल क्षुद्र देवतादेवियोंके मन्त्रसिद्ध करके उससे विषयभोग सामग्री जुटाते हैं ।

१—श्रीसीताराम मन्त्र तथा सम्बन्ध–उपदेशक सद्गुरु में स्थायी श्रद्धाभक्ति रखना। २–सामान्यतः रामभक्तोंमें, विशेष रूपसे सीतारामीय रसिक सन्तोंमें भी निष्टा रखनी चाहिये । ३–सदगुरुसे प्राप्त तुलसीकंठी, तिलक, पंचमुद्रा छाप, मन्त्र तथा शरणागति-सूचक नाम—इन पाँचो संस्कारोंमें भी निष्टा बनाये रखें। ये तीनों उपासनाके विशेष अंग हैं। ४- अपने इष्टमें रूपानन्य (अर्थात् एकमात्र आपहीके रूपका दर्शन, ध्यानका अनन्यव्रत), धामानन्य, नामानन्य, गुणानन्य, प्रसादानन्य और रसोपासनानन्य। छः प्रकारकी अनन्यता धारण करनी चाहिये। ५—हमारे इष्टमें १-ज्ञान, २-शक्ति, ३-बल, ४-एश्वर्य, ५-वीर्य तथा ६-तेज सभी ब्रह्मके सगुणरूपोंसे अधिक है। यह षटपरत्व हुये। आपके अनन्तगुणोंमें ये छः प्राथमिकगुण हैं, इनके बिना भगवान् नामकी सार्थकता नहीं होती ।

तवानन्त गुणस्यापि षडेव प्रथमे गुणाः ।
ज्ञान शक्ति बलैश्वर्य वीर्य तेजांस्यशेषतः ।

भगवच्छन्द वाच्यानि विना हेयै गुणादिभिः॥

— श्रीभगवद्गुण-दर्पणे ।

६—अपने भक्तोंको माधुर्यानन्द प्रदान करनेके लिये, प्रभु अपने ऐश्वर्यको छिपाकर लोकवत् लीला करते हैं । यही आपका माधुर्य है । "लोकवत्तु लीला कैवल्यम् ।" ब्रह्मसूत्र २। १।३३—ऐसे माधुर्य चरितका विशेषरूपसे चिन्तवन करना उपासनाका छठा अंग है ।

७—जिज्ञासुओंकेबीच अपने उपासना सिद्धान्तको युक्ति संगत वचनों द्वारा स्थापित करनेकी प्रवीणता धारण करना, सातवाँ अंग है । उपर्युत सातों अंग मुख्य हैं । कुछ उपासना के और अंग भी हैं, जिन्हें पूर्वभागमें विवेचित किये गये हैं ।

उप अव्यय समिपार्थ पुनि, आस् प्राप्त्यर्थक धातु ।
ल्युट् प्रत्यय कर सिद्ध सो, शब्द उपासन ख्यात ॥६१॥
जा करिकै उपास्यको, प्राप्त उपासक होइ ।
कहिये ताहि उपोसना, बिनु गुरु लहै न कोइ ॥६२॥
विनु उपासनाज्ञान जिय, और ज्ञान सब तुच्छ ।
नृपती बिना अनीकनी, सोहत नाहीं कुच्छ ॥६३॥
कृति कृतज्ञता विज्ञता, जग अजात आराति ।
ये सब रहित उपासना विनु वर, यथा वराति ॥६४॥

भावार्थ :—अब उपासन शब्दकी व्युत्पत्ति कहते हैं । व्याकरणशास्त्रमें उप को शब्दके आदिमें जोड़ने वाला उपसर्ग

कहते हैं। इसके रूपमें विकार नहीं होता है. अतः सभी उप-सर्गोंकी भाँति यह भी अव्यय कहाता है। उप यहाँ सामीप्य अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। आस् धातु है, इसका अर्थ है प्राप्ति कराना। ल्युट प्रत्यय लगनेपर प्रसिद्ध उपासन रूप सिद्ध है। उप + आस् + ल्युट = उपासन।

उपर्युक्त तीनों अंगोंसे व्युत्पन्न उपासन शब्दका अर्थ कहते हैं। जिसके द्वारा उपासक भक्त अपने उपास्य इष्टदेव की समीपता प्राप्त करे, उस साधनका नाम है उपासना। यह गुरु कृपा सुलभ है। बिना गुरुके शरणापन्न हुये उपासनाका मर्म किसीकी समझमें आता नहीं, न वह फलित होती है।

उपासनाकी जानकारी नहीं हुई तो और ज्ञान किस काम का? हमारे लक्ष्य प्राप्तिमें जो सहायक नहीं हुआ, उस ज्ञानको धोधोकर चाटेंगे नहीं। सेनानायक राजाके बिना अनीकनी अर्थात् सेना कोई शोभा नहीं पाती। उच्छृंखल होकर, प्रजा को लूटेगी।

कोई अधिक पुरुषार्थी (कृति) है, कृत उपकारको मानने वाला कृतज्ञ है, बड़ा जानकार है (विज्ञ)। संसारमें अजात शत्रु होकर जन्म लिया है। अर्थात् ऐसा निर्वैर है कि उसके शत्रु संसारमें उत्पन्नही नहीं हुये। इन सब बड़े दुर्लभ गुणोंसे सम्पन्न होनेपर भी, यदि श्रीराम उपासनामें निरत नहीं है, तो बिना दूलहाके सजेधजे बारातके समान सर्वगुण वृथा हैं।

अति लघु देव उपासना, करत क्षुद्र मति सोइ।
छिनक तनक सी चांदनी, तुरित अंधेरी होइ ॥६५॥

नारायन उपासना, तासु श्रेष्ट अति आनि ।
करत कोउ ये शांत नर, अपवर्गद अनुमानि ॥६६॥

परतर रसद उपासना, रामसियाकी जानि ।
जैसे देखत कंदके, गुड़ चीनी सकुचानि ॥६७॥

भावार्थ :– ब्रह्मा, विष्णु, महेश– ये त्रिदेव महान् हैं। इन्द्रपुरीके देवता लघु हैं। "पिशाचों गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः।" इत्यमरे भूत, पिशाच गुह्यक, सिद्ध भी देवयोनि अन्तर्गत है, पर है अति लघु। इष्टदेवता जितने महान होंगे, उनकी सिद्धि भी उसी तारतम्यसे, क्लिष्ट एवं विलम्बसाध्य होगी। अतिलघु देवताकी क्षुद्रसिद्धि अनायास और अविलम्ब हो जाती है। अतः क्षुद्रबुद्धिके साधक क्षुद्र चमत्कार देखकर, उसकी साधनामें जुट जाते हैं। इनकी सिद्धिसे परमार्थ तो बनता नहीं, न हृदयको सुख शान्ति मिलती है। अतः इसकी मोहकता शीघ्र मिट जाती है। जैसे पावस कालमें बादलोंके फटनेपर तनकसी चाँदनी छिटक गई, पुनः सघनघनाच्छन्न आकाश के कारण पुनः अन्धकार छा जाता है।

हाँ, भगवान् श्रीमन्नारायण सगुणब्रह्म हैं। देव--उपासना की अपेक्षा इनकी उपासना अतिश्रेष्ट है, ऐसा विचार हृदयमें लाना चाहिये। परन्तु चारभुजा, गरुड़ वाहन, एवं शेषशयन होने से, तथा मातृपितृकुल व्याह लीलादिके अभावमें इनकी उपासनामें माधुर्यभाव बनता नही। यही कारण है कि दास्य,

सख्य, वात्सल्य और शृंगार भाव इसमें नहीं है। एकमात्र शान्तभाव वाले भक्त आपकी ऐश्वर्य-परक उपासना करते हैं। उपासना माधुरीही भगवद्धाम तथा प्रभुके नित्य कैंकर्यकी रुचि जगाती है। शान्तभाव वाले अधिकांश रूपसे निर्माण मोक्षकी ओर बहक जाते हैं। निर्गुण उपासनाकी अपेक्षा भगवान् नारायणकी ऐश्वर्यमयी उपासना निर्वाण देनेमें अधिक सक्षम है। वहाँ के शून्य ध्यानसे यहाँ के साकार स्वरूपका ध्यान सुगम है।

श्रीवृन्दावनबिहारीलालकी सरस उपासनामें पञ्च संबन्ध भाव बनता है। अतः श्रीमन्नारायण उपासनासे परे है। चराचर विमोहन रूपोत्कर्ष, राजमाधुरी एवं चरित्रनिर्माणकी आदर्श मर्यादा श्रीसीतारामजीमेंही है। अतः इनकी उपासना परतर है। सौन्दर्याधिक्य होनेसे श्रीरामोपासना अधिक रसनीय, आस्वाद्य है भी। अतः श्रीनारायण-उपासना गुड़ है, श्रीकृष्ण उपासना चीनी है तो श्रीजानकीवल्लभजूकी उपासना मिश्री है। मिश्रीके स्वादके आगे गुड़ चीनी हल्की हो ही जायगी।

नरहरि वामन परसुधर, कृष्णचन्द्र बलराम।
मच्छ कच्छ बाराह पुनि, बुद्ध कल्कि अभिराम ॥६८॥
ये दशहू अवतार सियराम उपासक जान।
रामसिया पद त्यागिकै, जनि उर धारै आन ॥६९॥

भावार्थ :—भगवान् नृसिंह, वामन, परसुराम, श्रीकृष्णचन्द्र, बलराम, मत्स्यावतार, कच्छपरूप, वाराहभगवान, बुद्ध-

भगवान एवं कल्कि—ये दशो सगुणब्रह्महीके अवतार हैं। परन्तु ये सभी अंसकला होनेसे परिपूर्ण ब्रह्म श्रीसीतारामजीकेही उपासक तथा सेवक हैं। अतः दसो अबतार श्रीसीतारामजीही की उपासना करते हैं। पूर्वभाग दोहा ३७ में तथा वहाँ की टीका में यही बात कही गई है। अपने इष्ट श्रीजानकीरमणका ऐसा परत्व जानकर, हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने हृदयमें एकमात्र इन्हीं युगलकिशोरजूके पादारविन्दका ध्यान करें। 'रोकिहौं नैन विलोकत औरहि।' अनन्यता उपासना की नाक है।

❀ भक्ति ❀

रहित सकल अभिलाष करि, उभय कांड कर हीन।
सुमिरन सिय रघुनन्दको, ताहि भक्ति जिय चीन ॥७०॥

शब्दार्थ :—अभिलाष=चाह। उभयकांड— १—ज्ञानकांड और २—कर्मकांड। चीन=पहचानना।

भावार्थ :—यहाँ उत्तमा भक्तिकी परिभाषा लिखते हैं। भक्तिकी सिद्धिकेलिये भोग और मोक्षकी चाह मिटानी पड़ती है। एकमात्र श्रीसीतारामजीके पादारविन्दमें अविच्छिन्न उत्तरोत्तर वर्द्धमान प्रेमकी कामना रह जाती है। श्रुति प्रतिपादित अद्वैत ज्ञान तथा स्मृति निरूपित स्वर्ग देनेवाले कर्म-इन दोनों से रहित केवल विशुद्धा भक्तिका आश्रयण करना। श्रीयुगलमनभावन मैथिलीरघुनन्दनजूका अखंड स्मरण अपनी इतिकर्त्तव्यता रहजाय। अपने हृदयसे इसेही भक्तिका स्वरूप पहचानना

चाहिये। इससे मिलती-जुलती परिभाषा श्रीहरिभक्ति रसामृत सिन्धुमें दी गई हैं—

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

सो पुनि त्रिधा बखानिये, साधन भाव रु प्रेम।
साधन सोई जानिये, जामें बहु विधि नेम॥७१॥

भावार्थः—भक्तिकी क्रमशः तीन भूमिकायें हैं। १-पहली साधन, दूसरी भाव और तीसरी भक्ति।

साधन उसे समझना जिसमें अनेकों प्रकारके नियम-भजनका विधान होता है। तीव्र साधनमें जुटनेपर क्रमशः भाव के उदय तक कई भूमिकायें पार करनी पड़ती हैं।

श्रद्धा अरु विश्रंभ पुनि, निज सजाति कर संग।
भजन प्रक्रिया धारना, निष्टा रुची अभंग॥७२॥
पुनि अनर्थ कर त्याग सब, यह लच्छण उर आनु।
प्रथमहि साधन भक्ति के, ताकरि भाव बखानु॥७३॥

भावार्थ :—शास्त्रश्रवण एवं सन्तोंके दर्शन सत्संग से, विशेषकर प्रभुकृपासे साधकके हृदयमें सर्वप्रथम श्रद्धाकी उत्पत्ति होती है। श्रद्धा बढ़नेपर अपने इष्टके प्रति विश्वास जमता है। तब भजनकी रीति-भाँति सीखनेकेलिये अपने सजातीय रसिक सन्त-महात्माओंके संग करनेकी प्रवृति होती है। उनसे सीख कर साधनभूता नवधाभक्तिका आचरण (प्रक्रिया, में लग (धारना)

जाना होता है। भजनके परिणाममें स्थायी संलग्नता (निष्ठा) भजनके प्रति बढ़ती है। तत्पश्चात् भजनका स्वाद (रुचि) मिलने लगता है। तब सुरुचिपूर्वक अखंड भजन भावना बनने लगती है। तब भोगलालसारूपी अनर्थका त्याग होता है। इस प्रकारके साधनभक्तिसे भक्तिपूर्व भावका उदय होना कहा गया है। इससे मिलता-जुलता भाव श्रीहरिभक्ति रसामृत सिन्धुमें इस प्रकार दिया गया है।

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थ निवृत्तिः स्यात्ततो निष्टा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाऽभ्युदञ्चति॥

❀ श्रद्धादि-लक्षण ❀

क्रियारंभके प्रथमहीं, उपजे उर आनन्द।
क्रिया विषै दुख सहनता, फँसै न आलस फंद ॥७४॥
ये तीनो बुध कहत कहत हैं, श्रद्धाके अनुभाव।
श्रद्धा संपति होय घर, तब वस्तूकी चाव ॥७५॥

शब्दार्थ :—विषै = मध्यमें। अनुभाव = लक्षण। चाव = लालसा।

भावार्थ :—श्रद्धा शब्दका अर्थसूचक कोई प्रतिशब्द नहीं है। अतः इसका लक्षण बताते हैं। १—जिस पारमार्थिक कार्य अर्थात् साधनके प्रति श्रद्धा जगती है, वह अभी प्रारम्भ करने

ही वाले हैं । पहलेसेही हृदयमें भावी फलाशासे आनन्द उमग रहा है । २-साधनमें लग जानेपर, चाहे कितनेभी विघ्न आकर अनेक भाँतिसे दुख दें, तौभी कष्ट सहनपूर्वक साधनमें जुटे रहना, और ३-आलस्य प्रमादके फन्देमें न फँसना। बुद्धिमान् सज्जन श्रद्धाके ये तीन लक्षण बताते हैं । अपने हृदयरूपी भवनमें कृपासे प्राप्त श्रद्धारूपी सम्पत्ति होती है, तब परमार्थ सिद्ध करनेकी लालसा जगती है ।

श्रद्धा विना धर्म नहि होई ।
बिनु महि गन्ध कि पावइ कोई ॥

❀ विश्वास लक्षण ❀

सुनि लखि नहिं लोकीकमें, दरसन नहि आम्नाय ।
सो सुनि चित साँची गहे, सो विश्वास सुभाय ॥७६॥

शब्दार्थ :—आम्नाय=वैदिक साहित्यमें ।

भावार्थ:—अपने सद्गुरुदेवने अथवा किसी सच्चे सन्तने कुछ ऐसी विलक्षण बात बताई है, जो इस लोकमें न कभी देखनेमें आई, न सुनने में । वैदिक साहित्यमें भी इस चीजकी कहीं चर्चा नही है, परन्तु सन्त गुरुवचन तो अन्यथा हो नहीं सकते । जो बताया बिल्कुल सही है। इस प्रकारका सहज विश्वास आप्तबचनोंमें होना चाहिये। विश्वासका यही स्वरूप है।

❀ निष्ठा लक्षण ❀

जामें करिये भाव पुनि, सोइ परीक्षा लाग ।
बहु विधि चित उद्वेगहीं, तदपि तासु नहि त्याग॥७७॥

Scanned by CamScanner

यह निष्ठा अनुभाव लखि, जाके उरमें होय।
ताको कछु संशय नहीं, मिलैं रामसिय दोय ॥ ७८
जामें प्रीति लगाइये, लखि कछु तिहि विपरीत।
जिय अभाव आवै नहीं, सो निष्ठा की रीत ॥ ७९

शब्दार्थ:— उद्वेगही = व्याकुल बनादेता है अनुभाव = लक्षण। विपरीत = उलटी रीति। अभाव = प्रेमकी कमी।

भावार्थ:— हमने जिस प्रियतम इष्टसे प्रीति जोड़ी है, वही प्रीति परीक्षा कररहा है। जाँचनेमें अनेको कष्ट देकर चित्तको बेचैन बनारहा है। तो क्या हम उसे छोड़ दें ? कभी नहीं।

"अगिन जरावो जलमें बोरौ, सर्वस मेरो कोइ लूटै।
टूक टूक तनको करि डारौ तउ न हरि सौं टूटै ॥"
— लगन पचीसी से।

हम तो यहीं कहेंगे कि:—

आप सुखी रहैं प्रान प्रानिनी, मोहि चहौ तिहि भाँति कसौ री ॥
श्रीकृपानिवास पदावली से।

यही निष्ठाका लक्षण है। यह निष्ठा जिसके हृदयमें जमी होगी, उसे श्रीसीताराम युगलकिशोर चित्तचोरजू अवश्य मिलेंगे। तनकभी संशय नहीं।

जिसमें प्रीति लगाई है, वही प्रतिकूलकी भाँति निठुर होकर सता रहा है। तौभी उसके प्रति प्रेममें किंचित्‌भी कमी न आने पावै। निष्ठा निबाहन रीति तो यही है।

"हमें निष्ठाका सबक सीखना है, चातकसे और सोनेसे॥ जगत प्रेम विश्वविद्यालय है।

"जलद जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जल पवि पाहन डारउ॥
चातक रटिनि घटें घटि जाई। बढ़ै प्रेम सब भाँति भलाई॥
कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहे॥"

दरस परसमें सुख बढ़ै, विनु दरसन दुख भूरि।
यह रुचिकै अनुभाव लखि, करौ न रघुवर दूरि॥ ८०

❀ भाव भक्ति लक्षण ❀

भाव भक्ति तब जानिये, यह जिय होय सुभाय।
क्षमा विरक्ति अमानता, काल वृथा नहिं जाय॥ ८१
मिलन-आस-रजु बद्धचित, पुनि उत्कंठा जान।
आसक्ति तद्गुन कथन, प्रीति वसत अस्थान॥ ८२
नामगान में रुचि सदा, यह नव लक्षण होइ।
सिय रघुनंदन मिलन को; अधिकारी लखु सोइ॥ ८३

भावार्थः— जब नीचे गिनाये गये नौ लक्षण किसीके हृदयमें स्वाभाविक रूपसे जाननेमें आवे, तब समझना उसे भाव-भक्ति मिल गई और श्रीसीताराम युगल प्रभुको प्राप्त करनेका अधिकारी वह हो गया। नवों लक्षण इस प्रकार पठित हैं :—

१- अपने प्रति किये घोरसे घोर अपराध कोभी हँसते-हँसते क्षमा कर देना। २- संसारके सभी वैषयिक भोगोंका तन-

मनसे पूर्ण त्याग। ३- अपने सभी अभिमानमदको सर्वथा गला कर दीनहीन बने रहना। क्षणक्षण प्रति भजन भावनाको संभालते रहना, एक पलभी भजनहीन न जाने पावे। ५- प्रियतम हृदयेश से मिलनेकी पक्की आशा रूपी डोरीसे चित्तवृत्ति उसी प्राण-रंजनके साथ बंध जाना॥ "आशा लगी है बड़ी जोर सजनमाँ तोसे मिलनकी।" ६- प्रियतम से मिलनेकी (उत्कंठा) छटपटी, व्याकुलता बनी रहना। ७- प्रियतम गुणगानमें कुछ ऐसा सुख स्वाद मिलता है कि गुणगान छोड़नेका जी नहीं करता। चित्त ऐसा लिप्त (आसक्त) हो गया कि छोड़नेका नामही नहीं लेता। ८-अपना घर तो वहीहै जहां अपना प्राणसर्वस्व रहता है। 'पियके भवनमा अवधपुर राजै, कनकभवन समसेर ही।' यहीं बसनेमें मनराजी है; अन्यत्रके लिये नाराजी॥ हमारा प्यारा श्रीअयोध्याके बाहर एक डेगभी नहीं जाता। "अयोध्यायां परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।" तब हम अपने प्राणेशको छोड़ अन्यत्र कहाँ जाँय? ९- साजबाजके साथ सांगीतिक रीतिसे नामकीर्त्तन करते रहनेमें रुचि हो, वह रुचि निरन्तर बनी रहे। आधा क्षण नामके बिना मृत्युसे बढ़कर दुखदायी प्रतीत हो।

"क्षणार्द्धं नाम संहीनं कालं कालातिदुःखदम्॥"

यही उपर्युक्त नवो लक्षण नवोदित भक्तिभाव सम्पन्न हृदयवाले बड़भागीमें पाये जाते हैं।

'क्षान्तिरव्यर्थकालत्व विरक्ति मानशून्यता।
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदारुचिः।

आसक्ति स्तद् गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसति स्थले ।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जात भावाङ्कुरे जने ॥'
श्री हरिभक्ति रसामृत—

❀ प्रेमादि लक्षण ❀

विघ्न अनेकन होइ तौ, प्रीति रीति नहि हान ।
आसक्ती नित नव बढ़ै, सो लखु प्रेम प्रधान ॥ ८४

शब्दार्थ:— हान=त्याग । आसक्ति=लगन ।

भावार्थ:—प्रेममार्गमें प्राय: तीन प्रकारके विघ्न आते हैं ? १– प्रीति परीक्षार्थ स्वयं प्रियतम प्रदत्त । २– अन्य बाधक व्यक्ति प्रदत्त । ३– स्वयं अपने अन्त:करण स्थित मायिक विकारोंके द्वारा उपस्थित । तीनोंमें से अनेकों विघ्न एकसाथ आकर प्रेमको मटियामेट करनेपर तुले हैं, तौभी प्रीतिरीतिको कणमात्रभी नहीं कमने देते । श्रीलगन पचीसीमें के द्वारा रसिकाचार्य श्रीमत्कृपा निवास स्वामीका आदेश है :—

"लगन टरे नहि सिर टारि जावो ।" कुल सुख मुक्ति सुजात जान दै, लगन न तनक गँवावै ॥ श्रीकबीरजी कहते हैं—

"नेह निवाहे ही बने, सोचै बनै न आन ।
तन दै, मन दै सीस दै, नेह न दीजै जान ॥"

विघ्न आनेपर प्रियतममें लगन औरभी अधिक बढ़ती रहती है ।

"ज्यों ज्यों जरै कनक अरु नेही त्यों त्यों तेज सवायो ॥"

यह प्रधान प्रेमका लक्षण है । मन्द, मध्यम और प्रौढ़ भेदसे तीन कोटिके प्रेममें यह प्रौढ़ होनेसे प्रधान है ।

॥ स्नेह लक्षण ॥

स्नेह सुलक्षण जानिये, चित्त द्रवित लखि होय ।

तन धन विलग न मानही, तजे विछेदक जोय ॥८५॥

शब्दार्थ :—विछेदक=नेह नाता तोड़ डालने वाला ।

भावार्थ :—स्नेहके दो लक्षण लिखते हैं। पहला—अपने प्रियतमकी सुछवि प्रत्यक्ष, स्वप्नमें, आर्चाविग्रह रूपमें देखतेही हृदय पिघलने लगे। यहाँ लखना उपलक्षण है इससे प्रियतम-दर्शन स्पर्शन, प्रियतमचर्चा श्रवण, उनके गुण भाषण आदि सब क्रियायें आ जाती हैं। सभी हृदयको पिघलाते हैं।

दर्शने स्पर्शने वापि श्रवणे भाषणेऽपि वा।

यत्र द्रवत्यन्तरङ्गं स स्नेह इति कथ्यते ॥

दूसरा लक्षण यह है कि प्रियतममें अतिशय ममता हो जाती है। वह हमाराही है, हम उसीके हैं। ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाता है। ऐसी स्थितिमें प्रियतम हमसे नेह नाता तोड़कर हमें त्यागदे, तौभी हम उसीके होकर रहें। उनसे पृथक हमारा है ही क्या ? न तन अपना, न धन अपना, सब तो उसीका है। श्रीविनयजीमें इस आशयके दो पद पढ़िये।

जो तुम त्यागो राम हौं नहिं त्यागो।

परिहरि पाँय काहि अनुरागो ॥ १७७ ॥

भयेहूँ उदास राम, मेरे आस रावरी ॥— १७८ ॥

उपर्युक्त अवस्था आती है, स्नेहोदय होनेपर।

❀ अनुराग लक्षण ❀

सिय रघुवर सम्बन्ध करि, दुख जो सुख इव भास ।
सियरघुबर सम्बन्ध बिनु, सुख सो दुःख निवास ॥८६॥

यह लक्षण अनुरागके, अनुरागी उर जान ।
ताको करि सतसंग पुनि, अपनेहूँ उर आन ॥८७॥

भावार्थ :—श्रीमैथिलीरघुनन्दनजूके संयोग सुख पानेके साधनमें कोटि-कोटि कष्ट उठाना पड़े, तो प्रेमी भावी मिलन आशामें मारे आनन्दके फूले नहीं समाते । उस आनन्दकी खुमारीमें यहाँ के सारे संकट सुख रूपमें परिवर्तित हो जाते है । यदि सुरपति सदन या ब्रह्मलोकका सुखानुभव हो रहा हो, और उसमें युगलकिशोरका न तो कायिक संयोग है, न मानसिक, तो वह सुख कोटि-कोटि नरकयातनावत् प्रतीत होता है ।

राउरि बदि भल भव दुख दाहू ।
प्रभु बिनु बादि परमपद लाहू ॥

तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसरन सुखमूल ।

यह लक्षण अनुराग का है । श्रीसीताराम-चरणानुरागी बड़भागी भक्तोंके हृदयमें ऐसे अनुरागका नित्य निवास होता है । यदि इस कोटिका अनुराग पानेके लिये आपका जी भी ललचाताहै, तो उन्हीं अनुरागवान् महानुभावका सत्संग कीजिये

'खरबूजेको देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है।' अपने हृदयमें भी अनुराग लाकर बसा लीजिये। लक्ष्य तो यही रहे—

हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥

❀ प्रणय लक्षण ❀

लखु लक्षण यह प्रणय के, दृढ़ विश्वास जु होय।
बाढ़ै उर अति सख्यता, निज समता लखि कोय॥८८॥

भावार्थः—प्रेमोत्कर्षदशामें भक्त भगवान्‌के हृदय परस्पर हिलमिलकर जलदूधके समान एकमेक हो जाते हैं। जो निश्चय मान लेता है कि अब तो उनके बिना मेरा बनेगा नहीं, मेरे बिना भक्तवत्सल प्रभुको भी नहीं रहा जायगा। ऐसा विश्वास सुदृढ़ हो जाता है। हमारे प्रेमास्पद श्रीजानकीजीवनभी अवधेश राजकुमार और मैंभी अपने शुद्ध स्वरूपसे निमिवंशी राजकुमारी। जोड़ी सुन्दर बनीहै। हृदयमें उनकेप्रति सख्य अर्थात् समता भाव वाली निशंक मैत्री बढ़ने लगती है। उनके सुख में अपना सुख, उनके दुखमें निजी दुखकी अनुभूति होने लगती है, यह प्रणयका लक्षण है।

❀ ऐश्वर्याशया तथा माधुर्याशया उपासना ❀

लखु उपासना द्विविध सो, ऐश्वर्याशय एक।
द्वितिय माधुर्याशया, धारे यथा रुचेक॥८९॥
द्विभुज परात्पर रामसिय, रासादिक करि युक्त।
ध्यावै नित गोलोक सो, ऐश्वर्याशय युक्त॥९०॥

तथा अवधमें ध्यावहीं, रासादिक बहुरंग ।
बीच बीच मिथिला गमन, चहूं बन्धु मिलि संग ॥६१॥
माधुर्याशय जानसो, रसल जनन सुखमूल ।
करै सदा सोइ भावना, गहि लक्षण अनुकूल ॥६२॥

भावार्थ :—एक दृष्टिकोणसे उपासनाके दो प्रकार हैं । ऐश्वर्य भावसे तात्पर्य रखने वाली ऐश्वर्याशया उपासना कहाती है । दूसरी है माधुर्याशया-इसमें माधुर्य भावकी प्रधानता होती हैं। दोनों सही हैं । साधक अपनी रुचिके अनुकूल दोनोंमें से कोई एक धारण कर सकते हैं ।

ऐश्वर्याशयाका स्वरूप बताते हैं । ऊपरके सप्तलोकोंसे परे भूमि, अग्नि, जल आदिके सप्तावरण हैं । उसके पश्चात् विरजानदीके उस पार सप्तावरणमय नित्य भगवद्धाम हैं । मध्य में गोलोककी राजधानी श्रीसाकेतधाम हैं । वहाँ परात्परतम ब्रह्म नित्यद्विभुज श्रीसाकेतविहारीलालजू नित्य राजेश्वरी श्रीसाकेताधीश्वरी सियाजूके साथ अनन्त साकेत रमणियोंके मध्यरास-विलासादिक ललित लीलायें करते हैं।

तहाँ सखा नहिं दास पुरुष परिवर्ग न लहयाँ ।
पुरुषोत्तम एक आप सखी सेवा महँ जहवाँ ॥

सेवामें किंकरीका नाम नहीं गिनाया, इससे वहाँ दास्य रसका भी अभाव सूचित होता है ।

वहाँ की नायिकाओंको मायके, माता-पिताका वात्सल्य तथा ससुरालके सास-ससुरका दुलार प्राप्त नहीं होता है । वहाँ

केवल शृंगाररसका अखंड साम्राज्य है। बिना प्रजारूपी वात्सल्यादिरसोंके रसराज उतने रसनीय नहीं बनते। अतः वहाँ ऐश्वर्य प्रधान उपासना वाले पहुँचते हैं। यहाँ की भूतलस्थित अयोध्याभी नित्य है। महाप्रलयमें, सृष्टिके अभाव होनेके साथ जब पञ्चभूत वाले प्राकृतिक आकाशका नाश हो जाता है, तो यह अयोध्या चिदाकाशमें नित्यकी भाँति स्थित रहती हैं।

यहाँ भी नित्य रासविलासादिक रमणीय लीलायें निर्बाध रूपसे सदैव संचालित रहती हैं। अवतारलीलाका देशभी यही है। अतः मानवलोकके अन्यान्य देशोंसे यह दिव्य होते हुये भी अधिक साम्य रखती हैं। यहाँ नित्य परिजन-पुरजन भी रहते हैं। उनके साथ सभी सम्बन्धोंका रसानुभव होता है, जिसमें रसराजकी प्रधानता होती है। अवतार लीलासे मिलती जुलती यहाँ की नित्य विहारलीला है। नित्य मिथिला ससुराल में चारो भाई संगसंग पधारते हैं, और वहाँ का भी रसानन्द अनुभव करते हैं। यहाँ का नित्य विहार माधुर्य प्रधान है। यहाँ के सभी सम्बन्ध रस वाले परिकर नित्य हैं।

रघुकुलगुरु श्रीवशिष्टजी अपनी संहितामें ऐसाही कहते हैं।

नित्या इक्ष्वाकवः सर्वे नित्या रघुकुलोद्भवाः।
नित्योहं मुनयो नित्या नित्याः सर्वे च मन्त्रिणः॥
अयोध्यावासिनो नित्या ब्राह्मणा प्रमुखास्तथा।
नित्या भृत्याश्च दास्यश्च श्रीराजकुल सेवकाः॥

कौशल्या श्रीमती नित्यानित्यो दशरथो नृपः ।
कैकेयी च सुमित्राद्या नित्या श्रीराजयोषितः ॥
नित्या रघुकुलोद्भूता नित्यास्सर्वे कुमारकाः ।
नित्यं दशरथास्यांके स्थितस्य परमात्मनः ॥

आप यह न समझें कि यह एकपाद विभूतिवाली अयोध्या तो गौण है, त्रिपादविभूति वाला साकेतही अधिक महत्वपूर्ण होगा, क्योंकि वह ऊपर है। यह अयोध्या नीचे है। श्रीमत्कृपानिवास स्वामी अपनी अनन्यचिन्तामणिमें युक्तिपूर्वक कहते हैं कि तराजूपर अधिक ओजनवाली वस्तु नीचे रहती है। हल्का पलड़ा ऊपर चला जाता है। कारण अयोध्या यही है। इसीसे त्रिपादविभूति प्रगट हुई है। बीज धरतीमें रहता है। शाखापल्लव वृक्ष ऊपर उठ जाते हैं। ऊपरकी शाखाओंको रस देकर हराभरा तो नीचे वाला मूल ही करता है।

नित वैकुण्ठ अवधपुर आवै ।
सेवा करि पावनता पावै ॥
जैसे जलथानी अधमूला ।
ऊरध हरित डारि फल फूला ॥
हरि वैकुण्ठ अवधि दोउ तौले ।
गुरु हलकी को मोल अमोले ॥
गरवी अवधि रही ढरि नीचे ।
लघु वैकुण्ठ गयो उठि ऊँचे ॥

जल लों गुन ठहिरे थल गहिरै ।

सैल सिखा पानी कब ठहरै ?

— श्रीअनन्यचिन्तामणि ।

यही कारण है कि रसिकमहानुभाव सर्वरसोंका मूल इसी एकपादवाली अयोध्याको मानकर यहींकी माधुर्यलीलाकी सदा भावना करते हैं । ऊपर कहे सभी लक्षण वाली वस्तुओं में से अपने अनुकूल भावको ग्रहणकर लेते हैं ।

श्रीअनन्यचिन्तामणिमें कहा गया है कि भूतल अयोध्या रूपी मानसरोवरमें हंसरूपी रसिक रहते हैं । ऊपरकी त्रिपाद-विभूति वाले साकेत (वैकुण्ठ) रूपी वृक्षशाखापर अन्यान्यपक्षी के समान भावुक रहते होंगे ।

❀ साङ्ग भक्तिरस निरूपण ❀

भूमिका:—श्रीमधुसूदन सरस्वती रसकी परिभाषा लिखते हुये बताते हैं कि विभाव, अनुभाव, सात्विक और संचारीके सहयोगसे सुखद स्थायीभाव जिस आस्वादनस्वरूपा चित्तवृत्ति का सृजन करते हैं, उसीको रस कहा जाता है ।

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकै व्यभिचारिभिः ।

स्थायिभावः सुखत्वेन व्यज्यमानो रसो भवेत् ॥

जो काव्यरसिक लौकिक लोगोंमें रसकी मान्यता रखते हैं, वे भ्रममें हैं । स्वयं परमानन्दस्वरूप भगवान्‌का स्वरूप जब तक मनोगत नहीं होता, तबतक यथार्थ रस कहाँ? रसकी परि-पूर्णता तो उनकी भक्तिमेंही है ।

भगवान् परमानन्द स्वरूपः स्वयमेव हि ।
मनोगतस्तदाकारो रसतामेति पुष्कलम् ॥

रसके प्राण हैं भक्तिभाव। इसके उदय विशुद्ध भक्तके हृदयमें ही संभव है। विशुद्ध भक्त भुक्तिमुक्ति रूपी स्वसुखको त्यागकर, अपने परमप्रियतम युगलकिशोरजूको कोटिकोटि प्रकारसे लाड़प्यार करते हुये, उन्हें भाँतिभाँतिकी सुखसंपादिनी सेवामें तत्पर रहते हैं। ऐसे तत्सुखे सुखित्व भक्तके हृदयमेंही आप भक्ति भावका यथार्थ स्वरूप पावेंगे। यदि अन्यत्र भक्तिभाव देखनेमें आवे, तो आप उसे भावाभास मानें। भावाभासके दो भेद होते हैं। १- प्रतिविंव और २-छाया। अगले दोहेमें दोनोंके उपलब्धि-देश बताते हैं।

जानु भाव प्रतिविंव जो, उर मुमुक्षु के होय।
भाव सुछाया जानिये, अज्ञ हृदय पुनि जोय ॥६३॥

शब्दार्थ:—मुमुक्षु = मोक्षकी कामना वाले। अज्ञ = भक्तिके मर्मसे अनजान।

भावार्थ:— निर्माण मोक्ष चाहने वाले ज्ञानी, ज्ञानमार्गसे मोक्ष पानेमें कठिनाई देखकर, भक्तिका अवलंब लेते हैं।

रामचन्द्र के भजन विनु, जों चह पद निर्वान।
ज्ञानवन्त अपि ते नर, पसु विनु पूछ विषान ॥

शास्त्रोदित रीतिसे ज्ञानमिश्रा वैधी भक्ति करनेमें मोक्ष-कामना भाव प्राप्तिकी बाधक बन जाती है। यथार्थ भक्तिभावसे

शून्य होते हैं ज्ञानी। ज्ञानाभिमानमें विशुद्ध भक्तको अल्पज्ञ मानकर, उनका संगभी नहीं करते। कभी संयोग वश किसीसच्चे भक्तिका सम्पर्क हुआ, तो उनकी भजनक्रियामें विशुद्ध भक्तिभावके दर्शन करतेही, इनके हृदयमें भी उसका प्रतिविंब पड़ जाता है। ये भी उन्हींकी तरह रोमांच अश्रुपात आदि सात्विक दशा प्रगट करने लगते हैं। किन्तु इसे भाव प्रतिविंब मात्र समझकर, साधक उनका संग न करें। उनके संसर्गसे मोक्ष-मनोरथ आपके मनमेंभी आ जायगा। सच्ची-सच्ची भाक्तिसे वंचित रह जाइयेगा।

इस लोकसे लेकर परलोक तकके भोग मनोरथोंसे भरे कर्मकांडी, भक्ति द्वारा अनायास मनोरथ पूर्तिकी संभावना मानकर, कर्ममिश्रा भक्तिका आचरण करते हैं। तत्सुखे सुखित्वभाव विरहित, भक्ति रहस्यसे अनजान, ऐसे व्यक्तिको भी यदि सौभाग्यवश किसी सच्चे भक्तका संसर्ग हुआ, तो इनके हृदयके भावकी छाया कर्मकाडीके हृदयमें भी आ जाती है। छाया प्रतिबिंबकी अपेक्षा अल्पकाल स्थायी और चंचल होतीहै। भोगस्पृहासे मलिन अन्तःकरणमें भावछाया मात्र पड़ती है। शमदम उपराम आदिसे संशोधित हृदय ज्ञानीही भाव प्रतिविंबके अधिकारी हैं। कहनेका तत्पर्य कि भाव छाया जन्य अश्रुपुलकादि देख साधक इनका संग न करें? असली भक्तिभाव सम्पन्न भक्तको खोजकर उन्हींका सत्संग करना विधेय है।

ऐसे तो भावका प्रविविंब या छायाभी मंगलमयी है किन्तु—
'ताते कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥'

उपर्युक्त भाव विचार हमने श्रीहरिभक्ति रसामृतसे लिया है।

स्थायी अनुभाव पुनि, लखु विभाव दुहुँ रीति।
सात्विक अरु संचारि पुनि, अरस परस रिपु मीत ॥६४॥

शब्दार्थः— स्थायी = जो प्रेमकी दशा नित्य एकरस बनी रहे। अनुभाव = प्रेमानुभव प्रगट कराने वाले बाहरी लक्षण। विभाव = भावका उद्बोधक मनको किसी विशेष परिस्थितिमें पहुँचाने वाली अवस्था। सात्त्विक = भावोत्पन्न अश्रु, रोमांच आदि आंगिक विक्रियायें। संचारी = क्षणिक भाव जो किसी प्रधान स्थायी भावके बीचबीचमें उठउठकर उसकी पुष्टि करते हैं। अरसपरस = एक दूसरेके। रिपु = शत्रु। मीत = मित्र।

रसाभास पुनि जानिये, बिनु जानै रसरीति।
रसाश्रयन जो करत सो, होत अंग विपरीति ॥९५॥

शब्दार्थः— रसाभास = रसका अनुचित विषयमें वर्णन। रसाश्रयण = रसका सहारा लेते हैं। विपरीति = उल्टा।

दोहा ६४, ६५ के भावार्थः— रसिक साधक रसरीतिसे भाव भावना करते हैं। अतः इनकेलिये पंच प्रकारके ब्रह्म सम्बन्ध में प्रयुक्त होनेवाले रस और इसके अंगोंकी जानकारी करलेना आवश्यक है। इसका स्थायी भाव क्या है? अनुभाव किसे कहना चाहिये? दो प्रकारके विभाव क्या हैं? अष्ट सात्त्विक भाव कैसे होते हैं. तैंतोस प्रकारके संचारी (व्यभिचारी) भावोंके क्या स्वरूप हैं? कौनकौन रस किनकिन रसोंके वैरी हैं? किनके-किनके मित्र हैं? साथसाथ रसाभासका स्वरूपभी जान लेना

चाहिये। किसी रसग्रन्थमें पढ़कर, अथवा किसी रसज्ञ महानु-भावसे सुनकर उपर्युक्त सभी रसांगोंका ज्ञानप्राप्त करलेना आवश्यक है। अन्यथा रसमयी उपासनाके सहारा लेने समय भावमें उल्टी रीति, गलत तरीका पकड़ा जायगा।

उद्दीपन आलंव पुनि, दोइ विभाव जिय जोय।
उद्दीपन भूषन वसन, आलंवन पुनि दोय ॥६६॥

शब्दार्थ:—उद्दीपन=स्थायी प्रेमको उत्तेजित करने वाली वस्तु। आलंब=जिसके सहारे रस की स्थिति हो।

भावार्थ:—आलंवन विभाव हैं आशिक और माशूक, प्रेमी भक्त और प्रेमास्पद युगलकिशोर दोनों। प्रेमास्पदके भूषण वसन कहीं अलग पड़ेदेखें तब, या श्रीअंगोंमें सजे देखें तो, उनकेप्रति प्रेम और उत्तेजित हो उठे, यह उद्दीपनविभाव है। (उद्दीपनविभावके अन्तर्गत वनशोभा, भ्रमर गुंजार, त्रिविध पवन आदि वाह्य वस्तुयें भी आती हैं) इस प्रकार विभाव दो हुये १-उद्दीपन विभाव और २-आलंवन विभाव।

एक विषय आलंव पुनि, द्वितियालंव अधार।
यथा राम आधार पुनि, विषय रूप गुन सार ॥६७॥
विषय विधान करि हृदय, भजे सो विषयोलंव।
विषय अनिच्छ अधार को, भजे आश्रयालंव ॥६८॥

भावार्थ:— आलंवन विभाव के जो दो प्रकार ऊपर कहे गये हैं। उनमें एक है विषयालंवन दूसरा आश्रयालंवन। ऐसे तो

भक्त हैं आश्रयालंबन, क्योंकि उनके हृदयको आश्रय बनाकर भक्ति वहीं ठहरती है। श्रीजानकीजीवनजू भक्तिप्रेमके विषय हैं। उन्हीं के प्रति प्रेम किया जाता है। अतः वे विषयालंबन हैं। पुनः ये दोनों आलंबन प्रेमास्पद श्रीजानकीरमणजू में पाये जाते हैं तथा उनके प्रेमी भक्तों में भी।

प्रेमास्पद राघवजू स्वयं तो आश्रयालबन हैं तथा आप केरूप गुण विषयालंबन हैं, जो भक्तप्रेमीके प्रधान अवलोकन चिंतन के विषय हैं। रूपगुणही प्रेमोत्पादक हैं। जो प्रेमी भक्त आपके रूपगुणों को हृदय में अनुसन्धान करते हुये आपका भजन करते हैं, वहतो विषयालंबीभक्त। जो आपके स्वरूप-मात्र का सहारा लेकर आपका भजन करते हैं, आपके गुणोंकी खोज नहीं है वह आश्रयालंबी भक्त हैं। यथा शांत रस वाले मुनिगण।

मनो विकार सो भाव पुनि, तद्बोधक अनुभाव।
हृदय उदय बिनु भावके, प्रीतम मिलन न चाव ॥६६॥

भावार्थः—यह दिव्य प्रेमका प्रभाव है कि मनोदशाको बदलकर औरके और करदे। इसे विकृत बना डाले। जो मन प्रेमोदय के पूर्व नानाप्रकारके विषयमनोरथों से इधर उधर भटका करता था, वही अब ऐसा विकृत, रूपान्तरित हो गया है कि केवल अपने प्रेमास्पद श्रीजानकीरमण को ही सदैव निरंतर स्मरण करता हुआ, परमानन्द का अनुभव करता रहता है। इस मनकी रूपान्तरित प्रेमदशा को ही स्थायी भाव कहते हैं। इस

प्रेमानन्दके अनुभवसे अंगोंमें अनेक प्रकारकी बाहरी चेष्टायें उत्पन्न होती हैं। ये चेष्टायें हृदयगत प्रेमभावकी परिचायिकाएँ हैं। इन्हें अनुभाव कहेंगे। हृदय में ऐसे प्रेमभावका उदय नहीं तो प्रियतम मिलनकी विरहोत्कंठा होनेसे रही।

शांत, सख्य, वात्सल्य पुनि दास्य अरू शृंगार।
ये पाँचो रसभक्ति के तामें सुची उदार ॥१००॥

शब्दार्थः—सुची (शुचि०)=शृंगार (शृंगारे शुचिरुज्ज्वलः इत्यमरे) उदार=महान् बड़े। 'उदारो दातृ महान्' इत्यमरे।

भावार्थः—रसात्मिकाभक्तिके पाँच प्रकार हैं— १-शान्त, २-सख्य, ३-वात्सल्य, ४-दास्य और ५-शृंगार। इन पाँचों में शृंगारभाव सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि शृंगारही रस-राज कहाता है तथा उच्चसेउच्च प्रेम दशा इसीके द्वारा प्राप्त होती है।

❁ शान्त रसके अंग ❁

प्रथम शांत रसके सुनु, द्विविध विभावानुभाव।
सात्विक अरु संचारि पुनि, थाई चिन्ह जनाव ॥१०१॥

भावार्थः—सर्व प्रथम शांतरसके अंगोंको गिनाते हैं। उन अंगों के नाम हैं—१-दो प्रकारके विभाव, २-अनुभाव, ३-सात्विक भाव, ४-संचारी भाव और ५-स्थायी भाव सूचक लक्षण।

परब्रह्म परात्मा, नराकार भगवान् ।
इत्यादिक गुन आश्रयन, सो आलंवन जानु ॥

भावार्थः—ऊपर दो प्रकारके विभाव कहे गये हैं। उनमें आश्रयालंवन विभाव का स्वरूप यहाँ कहते हैं। उद्दीपन विभाव का अगले दोहे में कहेंगे।

हमारे इष्टदेव श्रीराघवेन्द्र यद्यपि द्विभुज मनुष्याकार हैं, परन्तु उनमें केवल ऐश्वर्य ही ऐश्वर्य है। वे परब्रह्म हैं, परमात्मा हैं तथा ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, और तेज—इनसे युक्त भगवान् हैं। शान्तरसके भक्त अपने इष्टके इन्हीं ऐश्वर्य प्रधान गुणोंका आश्रयण करके उनका भजन करते हैं। यही भजनीय वस्तु आलंवन विभाव है।

निशिदिन तत्व विचार पुनि, निवसत नग उद्यान ।
यह लक्षण सब शांत रस, उद्दीपन जिय जान ॥१०३॥

भावार्थः—शान्तरसके भक्त दिनरात आनन्दमय ब्रह्मतत्वका चिंतन करते हैं। एकान्त समझकर चाहे नग नाम पर्वतपर बसेंगे या उद्यान नाम बनमें निवास करेंगे। यही लक्षण उनकी भक्तिको उत्तेजित करने वाले हैं। उन्हें उद्दीपन विभाव कहेंगे।

नासिकाग्र करि दृष्टि पुनि, धरै वेष अवधूत ।
निर्ममता निर्वाक्यता तथा शास्त्र अनुस्यूत ॥

शब्दार्थः— नासिकाग्र = नाकके अगले छोरपर। अवधूत = त्यागी। निर्ममता = किसी वस्तु या व्यक्तिमें ममता (अपनपौ) न रखने वाला। निर्वाक्यता = मौन। अनुस्यूत = बँधे हुये।

भावार्थः – शांतरस वालोंके अनुभाव कहते हैं। इनका लक्ष्य भावःप्रेम प्राप्त करना तो है नहीं। इन्हें चाहिये ज्ञान। ज्ञानोदय होनेपर इनके अनुभाव, (बाह्य लक्षण) इस तरह प्रगट होते हैं। ये योगसाधना रीतिसे नाकके अगले छोरकी बिन्दुपर दृष्टि अड़ाकर त्राटक लगाते हैं। महात्यागीका वेष धारण किये हुये, न तो पात्र रखते, न शरीर पर वस्त्र, न रहनेका घर बनाते। सबोंसे ममता तोड़कर मौन धारण किये रहते हैं। स्मृति ग्रन्थोंमें यति धर्मका जैसा निरूपण किया गया है, उन्होंके आचरणरूपी बंधनमें जकड़े रहते हैं।

भगवत द्वेषी जनन सो नहि कछु जियमें द्वेष।
पुनि भगवतके भक्त जन, तासु न प्रीति विशेष ॥१०५॥

भावार्थः— प्रीतिरीति तो यही है कि प्रियतमका मित्र सो हमारा मित्र, प्यारेका शत्रु हमारा शत्रु। प्यारेका सुख हमारा सुख, प्यारेका दुख हमारा दुख। अपना न कोई शत्रु न मित्र, न सुख, न दुख। परन्तु ज्ञानी भक्तका पंथ इससे भिन्न है। उनको रागद्वेष निश्शेष रूपसे त्यागना है। अपने प्यारेका शत्रु हो या मित्र, इन्हें न किसीसे द्वेष न राग। सतोंसे भी स्नेह नहीं तब भगवानहीके प्रति राग क्यों? उनसेभी नेहनाता तोड़कर राग रहित हो जावो। अच्छा! तो आपको प्रेम नहीं चाहिये, तब क्या? मोक्ष! धन्य हो बाबा!! इस भक्ति मार्गमें आये ही क्यो? भक्ति साधनसे अनायास ज्ञान सिद्धिके लिये ज्ञानोदय होनेपर भक्ति त्याग देंगे। ज्ञानीजी यह भगवत भागवत प्रति उदासीनता

आपहीको मुबारक हो ! आपके इस ज्ञान वैराग्यको दूरसे ही प्रणाम करते हैं।

अनूभाव यह शांति के, शांती के उर होइ।
ताकी संगति रसिक जन, सपनेहुँ करै न मोइ ॥१०६॥

भावार्थः— शांतिरसमयी भक्तिवाले ज्ञानी पुरुषोंके यही बाहरी लक्षण उनके ज्ञानोदय परिचायक प्रगट होते हैं। जिनका वर्णन ऊपरके दोहेमें किया गया है। ऐसे प्रेमरससे शुष्क हृदय वाले शांतिमार्गीकी संगति रसिक साधकोंको भूलकर, स्वप्नमेंभी नहीं करनी चाहिये। जैसा संग तैसा हृदयपर रंग। शांत रसके उपासकोंमें आठमें से केवल सातही सात्विकभाव प्रगट होते हैं। उनमें प्रलय अर्थात् मरणसन्नदशा नहीं आती। वह दशा तीव्र अनुराग सापेक्ष है।

स्तंभ स्वेद रोमांच पुनि, कंप अरु स्वरभेद।
वैवर्न्य अश्रूपतन, सात सात्विका भेद ॥१०७

शब्दार्थः— स्तंभ = जड़वत् निश्चेष्टदशा। स्वेद = पसीना आना। रोमांच = शरीरके रोंगटे खड़े हो जाना। स्वरभेद = गद्-गद् कंठ। वैवरन्य = शरीरका रंग उतर जाना। अश्रूपतन = आँसू बहाना।

भावार्थः— शाँतरस वालोंमें ऊपर गिनाये गये केवल सातही सात्विकदशा प्रगट होती है। वहभी तब जब सच्चे प्रेमी भक्तके हृदयका भाव उनके हृदयमें प्रतिबिंबित होता है। पिछला दोहा ६२ और उसकी टीका देखें।

यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि सात्विक दशा होती है तीन प्रकार की। स्निग्ध, दिग्ध, और रुक्ष। सो इन शांत रसवालों में स्निग्ध कोटि की सात्विक तो होंगे नहीं। रुक्ष कोटि के ही संभव हैं।

मति धृति अरु निर्वेदिता; अपस्मृति संभ्रान्ति।
वितर्कादि संचारि सब, स्थायी पुनि शांति॥

शब्दार्थः— मति = शास्त्रादि विचारसे उत्पन्न निश्चय। धृति = (धैर्य सुखपाये फूले नहीं दुख पाये विललाय। सुखदुखमें समान भाव। निर्वेदता = भक्ति असहायक वस्तुओंका तिरस्कार। "जरउ सो संपत सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ।" अपस्मृति = (मृगी) दुःखसे उत्पन्न चित्त व्याकुलता। भूमि पर गिरना, दौड़ना, शरीर फटने लगना, कंप, मुँह से झाग निकला, हाथ पैर फेकना, चिल्लाना इसके अनुभाव हैं।
संभ्रान्ति = आवेगा, घबड़ाहट। प्रिय, अप्रिय, वायु, वर्षा, उत्पात, गज तथा शत्रु द्वारा उत्पात से घबड़ा उठना। वितर्क = संशय उत्पन्न होने पर, तत्व निर्णयके लिये किया जाने वाला विचार। (उपर्युक्त पारिभाषिक शब्दोंके अर्थ श्री हरिभक्ति रसामृत सिन्धु में व्याभिचारीभाव लहरी नामक प्रकरणके आधारपर किये गये हैं।

भावार्थ = रस शास्त्रोंमें संचारी या व्याभिचारीभाव तैतीस (३३) प्रकार के गिनाये गये हैं—

१-निर्वेद, २-विषाद, ३-दैन्य, ४-ग्लानि, ५-श्रम, ६-मद ७-गर्व, ८-शंका, ९-त्रास, १०-आवेग, ११-उन्माद, १२-अपस्मृति, १३-व्याधि, १४-मोह, १५-मृति (मृत्यु), १६ आलस्य, १७ जड़ता, १८-व्रीड़ा, १९-अवहित्था, २०-स्मृति, २१-वितर्क, २२-चिन्ता, २३- मति, २४-धृति, २५- हर्ष, २६- उत्सुकता, २७-उग्रता, २८-अमर्ष, २९-असूया, ३०-चपलता, ३१-निद्रा, ३२-सुप्ति और ३३-बोध । बिस्तारभयसे प्रत्येकका अर्थ नहीं लिखा गया ।

प्रस्तुत दोहेमें २३-मति, २४-धृति, १-निर्वेदता, १२-अपस्मृति, १-संभ्रान्ति अर्थात् १०-आवेग तथा २१-वितर्क नामक सात ही संचारी गिनाये गये । वितर्कादिमें आदि शब्द शेष और संचारी भावोंका उपलक्षण है ।

इसका स्थायी भाव है शान्त भाव ।

आगेके और चार भावोंमें वियोगकी दश दशाएँ भी गिनायी जायेंगी । शान्त भावसे सच्चा प्रेम तो होता नहीं, होता है प्रेमका प्रतिविम्बमात्र । बिना प्रेमके वियोग सम्भावना कहाँ ? अतः वह गिनाना यहाँ अनावश्यक है ।

❀ दास्यभावके रसांग ❀

अब चितदै सुनु दास्यके, अनुभावादिक चिन्ह ।
चिन्ह बिना नहि लखि परै, भाव रीति जिमि भिन्न ॥१०९

भावार्थ : - पूज्य ग्रन्थकर्त्ता हमलोगोंको मनोयोगपूर्वक दास्य भावके अनुभावादिक लक्षण सुननेका आदेश करते हैं ।

प्रत्येक भावके अनुभाव, विभाव, सात्विक भाव, संचारी भाव तथा वियोग दशाके दशलक्षण पृथक-पृथक होते हैं। इन लक्षण वैभिन्यके बिना एकभाववालेसे दूसरे भाववालेकी अलग-अलग प्रकारकी प्रीति रीति समझमें नहीं आती।

सर्वेश्वर सर्वज्ञप्रभु, अतिशय कृपानिधान।
इत्यादिक गुन आश्रयन, सो आलंबन जानु ॥११०॥

भावार्थ:—श्रीजानकीरमणलालके अनन्तानन्त गुणगणों में से पाँचों रसके भाववाले अपनी अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये अपने भावकेलिये उपयोगी कुछ विशिष्ट गुणगणोंका सहारा लेकर, आपकी उपासना करते हैं। शान्तभाववाले केवल ऐश्वर्य गुणका आश्रयण करते हैं। दास्यभाववाले ऐश्वर्यमाधुर्य दोनों गुणोंके आश्रयण करते हैं। उनमें माधुर्यकी अपेक्षा ऐश्वर्य की अधिकता होती है। यहाँ तीन ऐश्वर्य गुण तथा एक माधुर्य गुणके नाम गिनाये गये हैं।

तीन ऐश्वर्य गुण—१-हमारे स्वामी उभय विभूतिनायक परात्परतम ब्रह्म हैं। अत: त्रिदेवोंके, सभी अवतारोंके नियन्ता होनेसे सर्वेश्वर हैं। ज्ञान अखण्ड एक सीतावर, निबारण त्रिकाल ज्ञान सदैव एकरस एकमात्र आपहीमें देखनेमें आता है। ३- आप प्रभु हैं, सर्वसमर्थ हैं। असम्भव कार्य आपकेद्वारा सहज सम्भाव है। हमारे जैसे पतितका उद्धार आपहीसे सम्भव है। माधुर्य गुणमें आपके कृपा तत्वकी निरतिशयता है। हमारा सारसम्हार, भरण-पोषण, प्रीति रीति निर्वाह आप की कृपा करेगी।

ऐसेही और और गुणोंका आश्रयण करना इस भाव वालोंका आलम्बन विभाव है। आगे उद्दीपन विभाव का परिचय देंगे।

आठौं अंग प्रनाम पुनि, पद प्रक्षालन पान।
कृपादृष्टिकी चाह नित, सो उद्दीपन जान ॥१११॥

भावार्थ:—घुटना, हाथ, पाँव, छाती, सिर, वचन, दृष्टि और बुद्धि इन आठों अंगोंसे प्रणाम करना, स्वामीके चरण धोकर चरणामृत पीना, स्वामीकी कृपादृष्टि निरन्तर चाहना—यही दास्यभाव वालोंके उद्दीपन विभाव हैं।

आज्ञा शिरधारै सदा, सेवन चतुर अमान।
ढीठ बचन बोलै नहीं, यह अनुभाव बखान ॥११२॥

भावार्थ:—कैसे जानिये कि इनमें दास्यभाव वाली प्रभु प्रीति स्थायीरूपसे जम गई है? उस हृदयस्थ गुप्त प्रीतिको प्रकट अनुभव करानेवाले लक्षण (अनुभाव) स्पष्ट रूपसे इनमें देखने में आवेगा। कौन कौन परिचायक लक्षण हैं?

'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।' स्वामी आज्ञाको शिर पर चढ़ाकर आदर करेंगे तथा अक्षरशः पालन करेंगे। सभी अभिमानोंको त्यागकर, नम्रतापूर्वक सेवा करनेमें परम प्रवीण इन्हें देखियेगा। स्वामीसे अतिसंकोच पूर्वक बात करेंगे। ठिठाई के वचन इनके मुखसे कभी निकलेंगे नहीं।

पूर्व कहे ते प्रलय युत, अष्ट सात्विका जान।
तन मनको जो छोभई, ताहि सात्विकाभाव ॥११३॥

भावार्थ :—शान्तभाव वालोंमें- १-स्तम्भ (जकथक-दशा), २-स्वेद (पसीना), ३-रोमाञ्च, ४ कंप (शरीरमें कँप-कँपी), ५ स्वरभंग, ६-विवर्णता, तथा ७-अश्रुपत- ये सातही सात्त्विक दशाका उदय होना बताया गया था । (देखिये दो० १०७) हास्यरतिमें आँठवा प्रलय अर्थात् मूर्च्छाभी सम्भव है। अतः यहाँ आठो सात्विक भाव समय-समयपर उदित होते हैं। यहाँ सात्विक दशाके लक्षण लिखते हैं। ऐसे रज, तम, सत् तीन मायिक गुणोंमें सतोगुण भी सत्व कहाता है, परन्तु यहाँ सत्व चित्त अर्थमें लिया गया है। वह चित्तभी श्रीरामप्रेमसे संक्रान्त होता है, तभी सत्व वाचक होता है । अवस्था विशेष-पर तनमनमें विकार उत्पन्न करके ये सात्विक भाव स्वतः स्फुरित होते हैं। अनुभाव और सात्विकमें यही पार्थक्य है, अनुभव वाली क्रिया बुद्धिपूर्वक की जाती है। सात्विक उद्योग न करनेपर भी स्वतः प्रगट हो जाती हैं।

हर्ष, गर्व, चिंता स्मृतो, मति धृति अरु निर्वेद ।
तर्क संक पुनि दीनता, सब संचारि सुवेद ॥११४॥

शब्दार्थ :—ऊपर गिनाये गये १० संचारीमेंसे चारके अर्थ पिछले दो० १०८ की टीकामें लिख आये हैं। शेष छः के शास्त्रीय पारिभाषिक अर्थ यहाँ लिखे जाते हैं।

हर्ष=इष्टदेवके दर्शन, उनकी चर्चाश्रवण आदिसे उत्पन्न होने वाली प्रसन्नता । गर्व=अपने सौभाग्य, अलौकिक गुण, आदि पाकर दूसरोंकी अवहलना करना गर्व कहाता है।

चिन्ता=अनिष्ट वस्तु पानेपर तथा अभिलषित वस्तु न पानेपर जो विचार होता है, वही चिन्ता है। स्मृति=श्यामघन, कमल आदि देखकर, प्रियतमके अंगवर्ण तथा नयनादि अंगोंका स्मरण हो जाना स्मृति है। संक (शंका)=अपनेमें मिथ्या कलंक लगनेपर अथवा औरोंसे अपने अनिष्टकी सम्भावनापर शंका होती हैं। दीनता (दैन्य)=दुःख, अपराध, त्रासपर, अपनेको नीच मानना दैन्य है।

भावार्थः— दास्यभावकी प्रीतिको सुदृढ़ बनानेके लिये शास्त्रोक्त तैंतीसों सचारीभाव समयपर तरंगकी भाँति उत्पन्न और लीन होते रहते हैं। उनमें हर्ष, गर्व, चिन्ता, स्मृति, मति, धृति, निर्वेद वितर्क, शंका, और दीनताके नाम गिनाकर शेषको 'सब' शब्दसे जना दिया।

जिय प्रभुता को ज्ञान पुनि संभ्रम आदर दान।
स्वामि भाव करि प्रीति यह थाइ भाव जिय जान ॥११५

भावार्थः— अब दास्य रतिका स्थायी भाव कहते हैं। ऐसे तो दास्यरतिका शास्त्रीय नाम है प्रीति भक्तिरस, परन्तु यहाँ उसकी व्याख्या है। इस दास्यरतिमें भक्तको अपने इष्टदेवकी प्रभुता तथा ऐश्वर्यका ज्ञानबना रहता है। उनका संभ्रम अर्थात् भयबना रहता है, कहीं किसी अपराधपर कुपित न हो जाँय। अपने प्रियतम इष्टको अधिकसे अधिक आदर सम्मान प्रदान करें। वह स्वामी है, सेव्य हैं; मैं उनका सेवक हूँ, दास हूँ। इस भावसे दास्यरति भावित रहती है।

प्रथमहिते मियरामको, दर्शन ही सो प्रयोग।
दर्शन पुनि अंतर पड़ै, ताकहँ जानि वियोग ॥११६

भावार्थः— रसग्रन्थोंमें चारप्रकारके वियोग मानेगये हैं। १–पूर्वरागमें मिलनके पहलेही मिलनेकी छटपटी उत्पन्न होती है। २–प्रवासमें मिलकर बिछुड़ जाना तीव्र वियोग कहा जाता है। ३–मान करनेसे भी वियोगज कष्ट होता है। ४– प्रेम वैचित्यीमें संयोग दशामें भी वियोगकी आशंकासे वियोग समान ही कष्ट होताहै। यहाँ दूसरे प्रकारका तीव्र कष्टदायक वियोगकी चर्चा है। पहलेसे अपने सेव्य स्वामीके दर्शन करके संयोगानन्द (प्रयोग) लूटते थे। अब वह दर्शन नहीं होते। कोई अंतर पड़ गया है। अतः बड़ी बेचैनी है, उनके बिना। यही है संयोगोत्तर वियोग।

वियुत युत दोइ योगमें, यह दस दसा बखानि।
कृशता जड़ता, जागरन, अनालंब धृति हानि ॥११७॥
ज्वर तापादिक व्याधि पुनि, जरनि अंग सो जानि।
बाढ़ै चित उनमत्तता, मूर्च्छा मरन निदान ॥११८॥

शब्दार्थः— वियुत=वियोग। युत=सयोग। कृशता= शरीर दुबला जान। जड़ता=निश्चेष्ट होकर जड़ समान बन जाना। जागरण=नींद नहीं आना। अनालंब=दंपति छबि अव-लोकि अहर्निश जीवति मधुर अली। अब वियोगदशामें दर्शनका अवलंब छूट गया। आश्रयहीनकी दशा है। धृति हानि=अधीर हो जाना। व्याधि=ज्वर ताप आदि शारीरिक रोग। अंग जरनि

=अंगप्रत्यंगमें जलन ताप। उम्मत्तता=पागलपनी। मूर्च्छा=वेहोशी। मरन=मृत्यु। निदान=अंतमें।

भावार्थः— दास्यरतिमें संयोगके पश्चात् जो दूसरी वियोग दशा आती है उसमें तीव्र कष्ट होता है। उस कष्टके मारे दश नीचे लिखी दशाएँ दास भक्तके अंगोंमें प्रगट होती हैं।

१- कृशता, २- जड़ता, ३- जागर्या, ४- आनालंब, ५- अधृति, ६- व्याधि, ७- अंगताप, ८- उम्माद, ९- मूर्च्छा, और १०- मृति (मरण)।

ये दशा दाशाएँ आगे वर्णन होनेवाले सख्यप्रेम, वात्सल्य स्नेह तथा शृङ्गारपरक अनुरागमेंभी पाई जाती हैं। वर्णन आवेगा।

❀ सख्य रति के रसांग ❀

अब वरनत हौं सख्य के, अनुभावादिक धर्म।
सखा चारि विधि जानि सो, सुहृद सखा प्रिय नर्म ॥११९।

भावार्थः— दास्यरति वर्णनकर चुकनेपर पूज्य चरण श्रीग्रन्थकर्त्ताजू अब सख्यभावमयी रतिका, रसांगरूप अनुभाव विभाव, सात्विक संचारी आदिके लक्षण (धर्म) लिखते हैं। स्मरण रहे कि सख्य रतिके नाम रसग्रन्थोंमें प्रेयोभक्तिरस या मैत्रीमय रसभी लिखे हैं।

सखा चार प्रकारके होते हैं। १- सुहृद सखा, २-सखा, ३- प्रिय सखा तथा ४-- नर्म सखा।

सुहृद सखा सो अधिक वय, वत्सलता करि युक्त।
कछुक न्यून वय सो सखा, दास्य धर्म करि उक्त ॥१२०॥

तुल्य वयस सो प्रिय सखा, नर्मसखा लखु सोइ।
रमनि रूप धरि रमन की, जिय लालसा सु होइ॥१२१॥

भावार्थ:– अब चारो प्रकारके सखाओंके पृथक पृथक वयक्रम, प्रेयोरस वैविध्य आदि लिखते हैं।

१– सुहृद सखा श्रीरघुलालजीसे अवस्थामें बड़े होते हैं। इनका सख्यभाव वात्सल्य मिला होता है। आखेटादि कालमें ये अस्त्रशस्त्रोंसे युक्त होकर रघुनाथजीसे आगेआगे चलते हैं। कहीं इनका अनिष्ट न हो; अत: प्राणोंकी बाजी लगाकर इनकी रक्षा करते हैं। इनके कर्त्तव्य अकर्त्तव्यका उपदेश देते तथा सर्वदा इनके हित साधनमें तत्पर रहते हैं। शयनकालीन अंग संवाहनमें ये मस्तक दबाते हैं। लालजी द्वारा चरण छूकर प्रणाम करनेपर माथा सूँघकर उन्हें आशीर्वाद देते हैं। इस कोटिके श्रीराघव सखाके नाम हैं –सर्व श्रीअहिबल, जयसिंह, वीरमणि, जयमंगल, सुखमाली, धर्मशील, दृढ़व्रत, वीरव्रत, राजसिंह, जयमाली आदि।

२– सखा मात्र कहानेवाले आपसे छोटी अवस्था वाले होते हैं। इनका संख्यस्नेह छोटे भाइयोंकी तरह दास्यभाव मिश्रित होता है। शय्यारचना, पादसंवाहन, पंखा झलना आदि इनकी सेवा होती है। इनमें सुदक्षिण, वीरभानु, लोकवीर, यशमाली, कीर्तिबाहु, यज्ञसेन, रणकेलि मणि, रणपाली, प्रभाशील, आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

३–प्रियसखा:— समान अवस्था वाले होते हैं। श्रीलाल-जूके साथ अनेकों केलिपूर्वक रमण करते हैं। इनमें निस्संकोच

ढिठाई होती हैं। राघवजूके साथ मल्लयुद्ध करेंगे। हाथसे पुष्पादि छीन लेंगे। वस्त्र पकड़ खींचते हैं। मंत्रीवत् कान लगाकर बतियायेंगे। इनमें श्रीप्रतापी, शुकमणि, सुशिरा, दीर्घबाहु, वीर कर्मा, अतिविक्रर्मा, मोहनांक, सुमाली, शीलमणि आदि नाम उल्लेखनीय है।

४- नर्मसखा:— दिनमें सखावत् व्यवहार, रातमें रमणी रूप धारणकर रासादिक विहारका सुखास्वादन करना इनका कार्य होता है। श्रीलालजूके दूत बनकर मानवती नायिकाका मान–मोचन, क्रीड़ा कलहमें प्रियतमपक्ष लेना, प्रियतमके कान लगाकर बतियाना इनकी चेष्टा चातुरी है। इनके नाम सुन्दरास्य, अमृत- अमृताधर, कामतंत्र' सुस्मित बदन, प्रियादर, मोहनाक्ष, गुप्तकेलि, नव्यांग प्रियंवद, प्रेमशील, मोहनास्य, प्रेमनिधि, नव्यशील आदि उल्लेखनीय है।

मरम सलोने नेहनिधि रघुवर बड़े सुजान।
इत्यादिक गुन आश्रयन सो आलंबन जान॥१२॥

भावार्थः—अब सख्यभक्ति रसके आश्रयालंबन विभाव का परिचय कराते हैं। श्रीअवध सुन्दरजूका चराचर बिमोहन–रूप तो सबोंके लिये आकर्षक हैं ही, परन्तु इनमें जिन जिन गुणोंसे प्रभावित होकर, बालकगण इनमें सख्य या मैत्र्यभाव की स्थापना करते हैं, वे ही इनके स्नेहके आलंबन हैं वे गुण हैं—श्री रघुलालजूके स्नेहशील हृदयमें प्रेमरस का प्राचुर्य, आपके इन्द्रनीलके समान कान्तिमान श्री विग्रह के अंगअंग से लुनाई

चू रही हैं। दर्पण के समान प्रतिविम्ब ग्राही है श्री अंग। स्नेहके तो अपार सिन्धु हैं आप। आप त्यागवीर, दयावीर, विद्यावीर तथा पराक्रमवीर होने से रघुबीर नामको सार्थक करते हैं।

"नीति प्रीति परमारथ स्वारथ।

कोउ न राम सम जान जथारथ॥

अतः आप परम सुजान हैं।

चपल तुरंगनि फेरनो, मृग तकि मार्गनि बानु।

करि प्रन लच्छनि बेधनो, सब उद्दीपन जानु॥१२३॥

भावार्थः—सखागण वायुवेगके समान चंचल घोड़ोंपर चढ़कर उन्हें कलापूर्वक नाना गतियों के साथ दौड़ाते हैं। मृग शब्द में बाघ, सिंह, गैंडे, बनैले भैंसे, सूअर आदि सभी वन्य हिंस्र पशु आ जाते हैं। सघन वनमें शिकारकरते समय इनपर निशाना तिकाकर वाण प्रहार करते है। किसी दूरस्थ सूक्ष्म चिन्ह को अपना निशाना (लक्ष्य) बनाते हैं। अपने फेके हुये वाण की नोक को ठीक उसी चिन्ह में घुसा दूँगा। ऐसा उन्हें अपनी वाण विद्या पर दृढ़ विश्वास होता है। अतः प्रण करते हैं कि लक्ष्य वेधन नहीं करूँ तो आजसे अमुक त्याग दूँगा। ये सभीकार्य उनके सख्यरतिके उत्तेजित करनेवाले उद्दीपन विभाव कहाते हैं।

धरि गलभुज बतरावनी, इक संग भोजन सैन।

अनूभाव यह सख्यके, सबविधि सुखके ऐन॥१२४॥

भावार्थः— अब सख्यस्नेहके परिचायक इन सखाओंकी

चेष्टाओंका वर्णन करते हैं। श्रीरघुलालजूके साथ गलबहियाँ देकर घुलघुलकर मीठी-मीठी बाते करेंगे। बिना मित्रके भोजन नहीं। कितनाभी स्वादिष्ट पदार्थ कोई दे, उनके बिना अकेले खानेमें रुचेगा नहीं। अपने गृहके सुखद शयनको छोड़कर मित्रके साथ चाहे जैसेभी सोना पड़े, स्वीकार है। क्षणमात्रभी उनसे पृथक रहना असह्य है। इनकी इन्हीं क्रियाओंको देखकर समझ लीजिये कितना अगाध सख्यस्नेह भरा है इनमें। अतः सख्यभक्ति रस सबप्रकारसे सुखनिधान हैं।

पूर्व कहे तं सात्विका, रोमांचादिक अत्र।
हर्ष गर्व आदिक सकल, संचारिहु जो तत्र ॥१८५॥

भावार्थः— स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभेद, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय। ये आठों सात्विकभाव यही रोमांचादिकसे सूचित हुये। पहलेभी इनके नाम आ गये हैं। यहाँ अब सख्य-भक्तिरसमें भी ये आठों समय-समयपर प्रगट होते हैं। हर्ष गर्व आदिकसे तैतीस संचारी भावोंके नाम दोहा १०८ की टीकामें गिनाये गये हैं। तहाँ (तत्र) सख्यभावमें सभी संचारी संभव हैं। यहाँ सख्यभक्ति रतिमें तैतीस संचारी भावोंमें अधिकांश संभव होते हैं, इसी दृष्टिसे यहाँ 'सकल' शब्द कहा गया है। प्रेमसुधा रत्नाकारमें तीन संचारी भावोंको सख्यरतिमें असंभव बताया है।

'संचारी यहि माँझ सब, वर्जित तीनि लखात।
औग्र्य, ताप, आलस्य एक, कविजन वरनत जात ॥'

वियोग दशामें पाँच नहीं प्रगट होते तथा संयोग कालमें भी अन्य पाँच नहीं दीख पड़ते । यथा—

'हर्ष, गर्व मद, नींद धृति, ये वियोग में नाहि ।
मृति क्लम व्याधि अपस्मृती, दीन योग नहि आहि ॥'

सख्य रती स्थाइ पुनि, प्रनय प्रेम अरु नेह ।
अनूराग अस जानिये, मनो एक दुइ देह ॥१२६॥

भावार्थः— सख्यभाव वालोंमें प्रारंभिक अवस्थामें जो स्थायी भाव उत्पन्न होता है, उसे सख्यरति या प्रेयो भक्तिरस कहेंगे । पुनः उसकी बृद्धि होते-होते क्रमशः प्रणय, प्रेम, स्नेह तथा अनुराग तक पहुँच जाता है । श्रीराघवलाल तथा उनके सखामें पारस्परिक इतना मैत्र्य देखा जाता है मानों दोनों एकही प्रेमतत्त्व के दो मूर्तिमान स्वरूप हों ।

प्रणयदशा कहती है श्रीरघुलालजूके पिनाक भंजन, तारका वध आदिक ऐश्वर्य देखकर इन सखाओंके प्रेममें न तो भय न संकोचकी मिलावट हो पाई ।

प्रेममें बाधक प्रसंग उपस्थित होनेपरभी न्यूनता नहीं होती । सखाओंको त्यागकर वन लीला, रण लीला हुई । तो क्या इनके प्रेममें कोई अभाव आया ?

स्नेहदशा प्राप्त होनेपर चित्त द्रवित होता है तथा दर्शनादि से तृप्ति नहीं होती । "दरसन तृप्ति न आजु लागि, प्रेमपियासे नैन ।

अनुराग दशामें सख्य स्नेह नित्य नव्य नकायमान होता रहता है ।

दशा वियोग प्रयोग में, पूर्व कही दस सोइ ॥

भावार्थ:— संयोगोत्तर वियोग तीव्र होता है। इनमें वही दश दशाएँ क्रमशः उत्पन्न होती रहती हैं। जिनके नाम प्रथम कथित दोहे ११७ तथा ११८ में गिनाये गये हैं। अर्थात् कृशता, जड़ता, जागरण, अनालंब, अधृति, व्याधि, अंगताप, उन्माद, मूर्च्छा, तथा मृति।

❀ वात्सल्यरसके अंग ❀

अब वत्सल रस कहत हौं, करि विवेक सो जोइ ॥

भावार्थ:— अब वात्सल्य रसके अंगोंका वर्णन करेंगे। वर्णित दृष्टिकोणसे विवेचन करते हुये, वात्सल्य भक्तिरसका स्वरूप देख लीजिये (जोइ) अर्थात् समझ लीजिये।

अति सुकुमारे सुलच्छनै, विनयी शील सुभाव।
यह गुन हैं रघुनाथ कै, सो आलंब विभाव ॥१२८॥

भावार्थ:— विषयालंवन विभाव श्रीरामलालजूमें कुछ अनोखेगुण हैं, जो आपके लालकपालक मातापितादि गुरुजनोंमें वात्सल्यस्नेह बढ़ानेके अधारहैं। इन्हें आश्रयालंवन बिभाव नामसे अभिहित किया जाता है।

आपके इन्दीवर श्यामांगमें भीतर बाहर इतनी अधिक कोमलता है कि क्या नवनीत, क्या सीरिषकुसुम सभी विलज्जित हो जाते हैं। इनके अंगोंमें सभी सामुद्रिक शास्त्रोक्त सुलच्छण दीख पड़ते हैं। कितने सरल, संकोची एवं विनयी स्वभाव है इनका ! गुरुजनोंको अधिकसे अधिक आदर प्रदान करनेका शील है।

इन्हीं गुणोंको देखकर गुरुजन इन्हें अनुग्राह्य, एवं लाल्य मानते तथा कोटिकोटि भाँतिसे इनका दुलार करते हैं।

मृदु हँसि तोतरि बोलनी, औरौ बाल सुभाव।
यह गुन सब रघुनाथके, सो उद्दीपन विभाव ॥१२६॥

भावार्थः—मातापितादि गुरुजनोंसे बोलते समय कोमलांगजूकी वाणीभी अत्यन्त कोमल हो जाती है। हँसते-हँसते तुतला-तुतलाकर बोलना मातापिताको स्नेहाधीर बनाये देती है। १८ शैशवावस्थाका चंचल स्वभाव वात्सल्य स्नेहमें और चार चांद लगा देते हैं। ऐसीऐसी मनोरम बालकेलि श्रीरघुलालजूके उद्दीपन विभाव हैं।

अंग पोंछि पुनि अंक लै, करव मस्तकाघ्रान।
लालन पालन सकल विधि, सो अनुभाव बखान ॥१३०॥

भावार्थ—श्रीकौशल्याअंबाजी आपके बालकेलि कालीन धूल धूसरित अंगोंको अपने आँचरसे झारती पोंछती है। पुनः गोदमें बैठा लेती हैं। आपके मंगलवृद्धिके लिये आपका माथा सूँघती है। माथा सूँघना ताँत्रिक टोटका है। उबटन लगाकर स्नान कराती हैं। अपने करकंजोंसे इनका शृंगार करती हैं। भाँति-भाँति सुरुचिकर मिष्ठान्न पकवानोंको दुलरा-दुलराकर खवाती हैं। सुन्दर कोमल शय्यापर सुलाती हैं। ये सब आपके लालन कार्य हुये। पुनः आपको अनिष्टोंसे सुरक्षित करनेके लिये आपके श्रीअंगोंमें रक्षामन्त्रोंसे न्यास करती हैं, माथेपर रक्षातिलक

की रचना करती हैं, भुजाओंपर रक्षौषधि यन्त्ररूपमें बाँधती है। ये सब आपके पालन कार्य हैं।

माता-पितामें पाये जाने वाली दुलार प्रक्रियायें इनके वात्सल्य स्नेहके परिचय देनेवाले अनुभाव हैं।

पूर्ब कहे ते सात्विका, संचारिहु पुनि सोय।
दसा वियोग प्रयोगमें, पूर्ब कही दस जोय ।।१३१।।

भावार्थः— वात्सल्यरति वाले श्रीरामभक्तोंमें भी स्तम्भ स्वेद आदिक वही दशो सात्विक दशायें प्रगट होती हैं, जिनके नाम दोहा १०७ में गिनाये गये हैं। संचारी इनमेंभी वही तैंतीसों क्रमशः तरंगायमान होती हैं। इनमें मोहका अधिक उद्रेक होता है। संयोगान्त वियोगमें इनमेंभी दोहा ११७, ११८ में गिनायी गयी दश दशायें समय-समयपर प्रगट होती हैं।

वत्सलता स्थायि पुनि, प्रनय प्रेम अरु नेह।
अनूराग अस जानिये, बिछुरे रहे न देह ।।१३२।।

भावार्थः— प्रस्तुत भक्तिरसमें स्थायीभाव है अनुकंपाकारी वात्सल्यरति। रति अवस्थामें यह वात्सल्यभाव नवांकुरित होता है। क्रमशः विश्वास प्रधान प्रणयका, पुनः, अटूटममतापूर्ण प्रेम, तत्पश्चात् अतृप्तदशा वाला द्रवणशील स्नेहके अन्तमें नित्य नव-नवायमान होनेवाला अनुराग जागता है। यह प्रेमदशा इस भाव वालेका इतनी उत्तेजित होती है कि बिछुड़नेपर शरीरांतही हो जाता है।

"बंदो अवधभुआल, सत्य प्रेम जेहि रामपद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तन तृन इव परिहरेउ।।"

❀ शृङ्गार रस ❀

अब बरनत हौं ललित रस, ललिताई की खान।
ललित चित्त धारन करै, रुच्छ चित्त नहि मान ॥१३३॥

शब्दार्थः— ललितरस = शृङ्गाररस। रुच्छ = रूखासूखा।

भावार्थः— अब मधुर रसका वर्णन करते हैं। यह तो रसकी खानही है। इसके अधिकारी हैं सरसचित्त वाले रसिक संत। इन्हींके हृदयमें यह रस जमेगा भी। रूखे-सूखे विषयी, कर्मकांडी, ज्ञानमार्गींको इसमें आस्थाही नहीं होगी।

झब्बे झुकत कपोल पै, बिलसत अधर बुलाक।
सिर सुरंग पगिया लसन, तुर्रे कलँगि झुलाक ॥१३४॥
अंसन पर अलकैं लसत, भुज अंगद छबि देत।
छुरा छबीलो फेंट में, चित्त चुराये लेत ॥१३५॥
खञ्जन सफरी से चपल, अनियारे युग बान।
जनु युवती एनी हतन, भौंह चाप संधान ॥१३६॥
ललित कसन कटि बसन की, ललित लटकनी चाल।
ललित धनुष कर सर धरनि, ललिताई निधि लाल ॥१३७॥

शब्दार्थः— झब्बे = गुच्छे बुलाक = नाशामणि। सुरंग = लाल। तुर्रे = फुदने। कलंगी = चिड़ियाका पंख। अंसन = कंधों सफरी = मछली। अनियारे = नुकीले, पैने। एन = मृगी। संधान = निशाना लगाना।

भावार्थः - रसिक भक्तोंकी दृष्टिमें श्रीरघुलालजूके अंग-अंगकी सजावटसे रमणीयता चू रही है।

श्रीराजदुलारेजूके मनोहर माथेपर लाल पाग कैसा फब रहा है! उसमें लगे गुच्छे कपोलों तक लटक रहे हैं। उसमें फुदने झूल रहे हैं। सिरपेंच कैसा मजा दे रहा है? अधर पर नाशामणि लटकती देखकर जी तरसता है।

दोनों कंधोंपर जुल्फ लटें लटक रही हैं। भुजाओंपर अङ्गद नाम भूषण सजे हैं? कटिकाछनीमें क्षत्रियकुमारोचित मनोज्ञ छुरा खोंसे हुये हैं। जो जंघातक लटक रहा है। इसकी शोभा मनमोहनी है।

आपके नयन रमणीरूप दर्शनमें ऐसे चंचल हो रहे हैं, जिनके सामने खंजनपक्षी एवं छोटी मछलीकी चंचलता झूठी लगती है। नयन क्या हैं मानों दो नुकीले तेज बाण हैं। मानों नवयौवना नायिका रूपी मृगीको वध करनेके लिये, भौंह रूपी धनुषपर चढ़ाकरनिशाना तिका रहे हैं।

कटितटमें काछनीकी मनोज्ञ कसन फब रही है। रसीली गतिसे लटक-लटककर मनहरनी चालसे झूम-झूमकर चल रहे हैं। करकंजोंमें धनुषबाण सुशोभित हो रहे हैं। श्रीअवधेशलालजू रसिकताकी तो खानही हैं।

ललिताई रघुनन्द की, सो आलंब बिभाव।
ललित रसाश्रित जननको, मिलन सदा मनु चाव ॥१३८॥

भावार्थः-श्रीरघुनन्दन चितफंदनजूकी ऊपरि वर्णित सरसता

ही विषयालंबन विभाव है। मधुर रसके आश्रयण करनेवाले रसिक भक्तही आश्रयालंबन है। उन्हें यह हृदयहारिणी राघव शोभा उनसे मिलनेकी छटपटी (चाव) जगाती है।

कोकिल शब्द बसंत रितु, सो उद्दीपन जानु।
मंद हसनि दृग फेरनी, सो अनुभाव बखानु ॥१३९॥

भावार्थः— दिव्य प्रमोदवनमें बारहमास दिनमें वासंती एवं रातमें शारदीय शोभा सरसती रहती है। सो बसंत बिलास एव कोयलकी काकली दिव्य शृङ्गारमय प्रणयको उद्दीप्त करने वाली हैं।

सौन्दर्य माधुर्य सुधासिंधु रघुनन्दजूके दर्शनोंसे रमणियोंके हृदयमें उल्लसित प्रीतिके परिचय देनेवाले अनुभाव हैं-- मंदमंद मुसकान एवं चंचल कटाक्षक्षेप।

पूर्व कहे ते सात्विका, सबै सुदिप्ता जानु।

भावार्थः— पहलेभी स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, अश्रुपात आदि आठ सात्विकोंके नाम गिनाये गये हैं। यहाँ इस मधुर रसमें भी वे सभी समय समयपर उदित होते हैं। किन्तु यहाँ उनमें कुछ विशेष चमत्कार हो जाता है। धूमायित, ज्वलित, दीप्त, उद्दीप्त और सुदीप्त उत्तरोत्तर अधिकाधिक रूपसे चमत्कृत पाँच प्रकारके सात्विक भावोंका विवेचन श्रीहरिभक्ति रसामृत सिन्धुमें विस्तारसे किया गया है। सुदीप्त सर्वाधिक प्रकाशित सात्विक है। रसिकों के सर्वोच्च प्रेमदशामें ही इनके चमत्कार दर्शित होते हैं।

उग्र अरु आलस्य बिनु, संचारिहु अनुमानु ॥१४०॥

भावार्थः— तैतीस संचारीके नाम दोहा १०७, १०८ की टीकामें गिना आये हैं। उनमें और संचारी तो यहाँभी तरंगित होती हैं, किन्तु उनमें दो यहाँ नहीं रहते। उग्रता और आलस्य। किसी अपराधीको मारने, वध करनेके लिये प्रचण्डरूप धारण करनेको उग्रता कहते हैं। यहां परम सुकुमार प्रेमी प्रेमिकामें उग्रता कहां? मानदशामें भी सुकोमल वचनों द्वाराही उपालंभ मात्र देखियेगा।

रतिश्रमसे तृप्त होनेपर आलस्य प्राकृत स्थूल शरीरमें दीखताहै। यहाँ सदैव अतृप्तप्रेयसी एवं रमणलालमें कभी थकावट आती न आलस्य। अतः यहाँके संचारीमें दोनों छूँटकर केवल एकतीसही रह जाते हैं।

स्थायी प्रियता रती, प्रनय, प्रेम अरु नेह।
अनूराग असपरसपर, वारत तन मन गेह॥ १४१॥

भावार्थः— मधुर भक्तिरसमें स्थायी भावको प्रियतारति अर्थात् दाम्पत्यस्नेह कहते हैं। यहाँ जड़ अकुंरित होकर, शाखा प्रशाखा फूलफल रूपमें क्रमशः प्रणय, प्रेम और स्नेह तक इसका विकाश होता है। यहाँ प्रेमकी सर्वोच्च भूमिका अनुराग दशामें एक अपूर्व विलक्षणता होती है। पारस्परिक स्पर्श सुख पाकर इतना निरतिशय रसानन्दकी अनुभूति होती है कि जी करता है कि अपने अपरिमित सुखदायककपर तन, मन, धन सब कुछ लुटा देवें। यहाँ गेह अर्थात् घर शब्द गृहकी सम्पति राशिका सूचक है।

दशा वियोग प्रयोग में, पूर्व कही दश होय ॥

भावार्थः— यहाँभी संयोगान्त वियोगमें जड़ता, कृशता आदि पूर्वोक्त दश दशाएँ उत्पन्न होती हैं।

❀ रसवैरी मित्रता वर्णन ❀

अब रस रिपुतामीतता, कहौं जहाँ जस होय ॥१४२॥
मैत्री शान्त रु दास्य के, अरस परस सो जानु।
वत्सल सख्य तटस्थ दोउ, सुचि सपत्न अनुमानु ॥१४३
सख्य अरू शृङ्गार दोउ, अरस परस लखु मीत।
शान्त रु वत्सल दोउ यह, सुचि सों अति विपरीत ॥१४४
सुचि सपत्न दोउ सख्यके, लखु तटस्थ नहि मीत।
वत्सल रस कोउ रसन सों, राखत नहि हिय हीत ॥१४५
द्वौ द्वेषन लखु परसपर, दास्य अरु शृङ्गार।
रिपु रसांग धारे नही, इहि विधि जाननहार ॥१४६

शब्दार्थः—तटस्थ = उदासीन, न शत्रु न मित्र। सुचि = शृङ्गार रस। सपत्न (सापत्न्य) = सौतिया डाह, वैर। विपरीत = शत्रु हीत = प्रेम।

भावार्थः—शान्तभाव एवं दास्यभाव दोनोंमें इष्टकेप्रति ऐश्वर्य ज्ञानाधिक्य होता है। उनके समक्ष अपने को बहुत लघु माना जाता है। अतः दोनोंमें परस्पर मैत्री है। पुनः इन दोनों से वत्सल रस एवं सख्य रस तटस्थ रहते हैं। इन्हें शृङ्गार रससे वैर है। क्योंकि अन्तःपुर विहार देशमें उनका प्रवेश निषेध है। ब्रह्मसे जीवका समत्व व्यवहार भी इन्हें रुचता नहीं होगा।

सखा प्रियतम मित्र, सखी प्रियामित्र। अतः युगल-किशोर के मित्रोंमें पारस्परिक मैत्र्यभाव स्वाभाविक है। यही कारण है कि सख्य रस और श्रृङ्काररसमें मैत्री है। परन्तु श्रृङ्काररससे शान्तरस वैर रखता है। यह पहले कह आये हैं। वात्सल्यरसभी शृंगाररसका बैरी है। क्योंकि मातापितादि गुरुजनोंके सामने दाम्पत्य हिलन मिलनादिवैहारिक व्यवहार संकोच को प्राप्त होते हैं।

शुचिरस अर्थात् शृंगाररस तथा सख्यरस दोनोंहीसे वत्सलरस सापत्न्य अर्थात् वैर रखता है। तटस्थ भी नहीं, मित्रभी नही है। सचपूछो तो, वत्सल रसको किसीभी रसके प्रति हृदयमें मैत्र्य भाव नहीं है। दास्य और शृंगार भी परस्पर वैमनस्य रखते हैं।

इस प्रकार रसके मित्र और शत्रुको समझने वाले अपनी भावनामें अपने उपास्यरसके साथ शत्रुरस को नहीं मिलाते। यथा श्रीरघुलाल जब प्रातःकाल मातृपितृ दर्शन को महलसे बाहर जाते तब साथमें न तो प्रियाजू जातीं, न उनकी कोई सखी। दासों से बाहरी सेवा कराने काल, सरयूतट में एकांत भजन करने वालोंसे मिलन समयभी यही बात रहती है।

❀ रसाभास विमर्श ❀

रसाभास तब शान्त के, समता बुद्धि विनास।
निज प्रभु निकट जो धृष्टता, रसाभास सोइ दास॥१४७

यथा द्वजनके मध्यमें, एक सखा इक दास।
तब जानव जिय सख्य को, भई रीति आभास ॥१४८

पुत्रादिक वय अधिक लखि, लालनादि की हानि।
रसाभास वात्सल्य को, तब लीजै पहिचानि ॥१४९

रसाभास शृङ्गार के, तब पुनि जिय अनुमान।
विहरन इच्छा एकके, एक नहीं मन मान ॥१५०

भावार्थ:—शान्तभावके भक्त "देख ब्रह्म समान सब माहीं" उनकी दृष्टिमें "सीयराममय जग" है। अत: न उन्हें किसीमें राग, न द्वेष। ऐसे समत्व भाव में व्यतिरेक हो जाय, रागद्वेष के चक्कर में पड़ जायँ, तो उनकी शान्त रसमयी भक्ति विकृत हो जाती है। रसफट जाता है और हो जाता रसाभास।

दास्यभाव वाले भक्त अपने सेव्य प्रभु श्री जानकीजीवनजूमें परम प्रभुता तथा अपनेमें लघुता देखकर उनके सामने सभयं एवं सकोची बने रहते हैं। यदि ढिठाई करें, तो दास्यभक्तिरस विकला होकर रसाभास में परिणत हो जाता है।

दो भक्तोंमें एक सख्य भाववाले दूसरे दास्यभाव वाले हैं। पटरी कैसे बैठे? सखा श्री रघुचंद जू को अपनी बराबरी श्रेणी के मानते हैं। उनके प्रेम कलह में कहासुनी, उठापटक, सब प्रकार की ढिठाई होती है। उनके निकट दास रहेंगे, तो उन्हें ऐसी ढिठाई कब सहन होगी? अत: दासके संग से सख्यरस विकल होकर रसाभास हो जाता है।

वत्सलभक्ति रसके लाल्यपाल्य श्री राघव जू का कौमार बयक्रम पाँच वर्ष तक अधिक उपयुक्त होता है। उनकी तुतली बोली, शैशव चापल्य, मंदमुसकान वात्सल्य स्नेह को उद्दीप्त करती रहती है। श्री राघव जू सदैव उनके सामने होते ही पंच वर्षीय बालक बनकर उन्हें वात्सल्य सुख देते रहते हैं। यदि अधिक अवस्था उनकी देखलें, तो वैसा लाड़ दुलार बनेगा नहीं। वत्सल भक्तिरसका आभास मात्र रह जायगा।

शृंगार रस जमता है तब जब नायक नायिका दोनोंका मन मिल जाय। क्या हुआ यदि सूर्पनखा श्रीराघव सौन्दर्य पर काममोहित हो गई ? इधरसे स्वीकृति तो हुई नहीं। यही शृंगार रस का रसाभास है।

❀ सर्व रसाश्रय रघुनन्दन ❀

श्रुति भगवती ब्रह्म को 'सर्वरसः' कहती हैं। परात्परतम अनादि ब्रह्म श्रीअयोध्याविहारीमें यह श्रुतिवचन चरितार्थ होता है। जब आप श्री प्रमदावनकी रमणियोंके मध्य हासविलास करते हुए दक्षिण धीरोदात्त नायक की भाँति स्थित होते हैं, तब आप शुचि अर्थात् शृंगार रस के मूर्तिमान विग्रह प्रतीत होते। "जनु सोहत शृंगार धरि, मूरति परम अनूप।" जब आप विदग्ध लीला करते हुए, अद्भुत विहार विलास प्रगटित करते हैं उस समय आप अद्भुत रसके स्वरूप प्रतीयमान होते हैं। नर्म हास परिहास कालमें आप हास्यरस के आश्रयावलंबन वत् भाषित होते हैं। शृंगाररसके अङ्गभूत अद्भुत और हास्य हैं।

वनिता वृन्दन मध्य जब, रघुवर करत विलास।
सुचि अरु अद्भुत हास्य यह, तीनों रसन निवास ॥१५१

आखेटक अस्त्र शस्त्रों से लैस, चपल तुरंग पर आरूढ़, रघुकुलनायक सखेन्द्र राघवेन्द्र, जब सखासमूहमें हास परिहास करते हुये विराजते हैं, उस समय आप में सुख बरसाने वाला प्रधानतः सख्यरस तथा गौण रूप से हास्यरस, युद्ध वीर, धर्मवीर रस निवास करते हैं। तुरंग फेरनिका अद्भुत कलाकौशल आपमें अद्भुतरसका भी प्रतीत कराता है।

सखा मंडली मध्य जब, विलसत रघुकुल चन्द।
वीर रु अद्भुत हास्य पुनि, मुख्य सख्य सुखकंद ॥१५२

भृत्यवत्सल गुणनिधान राघव सुजान जब दासगणों के मध्य में सुसाहिब रूप से विराजमान होते हैं तब तो आप उन सेवकोंपर ऐसे वात्सल्य स्नेह दिखाते हैं कि सभी भृत्यवृन्द आनन्द मग्न हो जाते हैं।

पुनिपुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥

दास्य परीकर मध्य जब, राजत गुणनिधि राम।
वात्सलताकों प्रगट करि, देत सबनि अभिराम ॥१५३॥

पुनः श्रीवशिष्ट आदि मुनिजनोंके मध्य ब्रह्मण्यदेव रघुवंश विभूषणजू समुपस्थित होते हैं। तब आप उनके प्रति सब प्रकारसे सेवकाईका भाव दिखाते हैं। श्रीपरशुरामजीके प्रति श्रीमुख वचन "नाथ संभु धनु भंजननिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥"

उन लोगोंके हृदयमें परमानन्दका विस्तार करते हैं तथा स्वयं भी विप्र सेवकाईमें आनन्दानुभव करते हैं । विप्र सेवामें आपका उत्साह (चाव) अधिकाधिक बढ़ता ही रहता है ।

पुनि वशिष्ट आदिकन के, निकट दास्य अनुभाव ।
करि आनंदित करत अति, हिये बढ़ावत चाव ॥१५४॥

इसीसे तो कहते हैं कि सभी रसोंके निवास गृह एकमात्र रसिक शिरोमणि रघुनन्दन ही हैं । यह रहस्य (भेष) आप रसिक महानुभावोंसे समझिये । औरोंको तनकभी रसकी जानकारी नहीं है ।

रसिक सिरोमनि रसन गृह, रघुनंदन अति एव ।
रसिक संग बिनु नेकहूँ, जानत नहिं यह भेव ॥१५५॥

❀ फल श्रुति ❀

यह सिद्धान्त आदित्य इव; बसै जासु उर व्योम ।
द्युति अनन्यता होत, गत मिश्रित मत तमतोम ॥१५६॥

शब्दार्थः— आदित्य=सूर्य । व्योम=आकाश । द्युति= प्रकाश ।

भावार्थः— इस ग्रन्थमें प्रतिपादित सिद्धान्त मुक्तावलीको सूर्य समझें । रसिक साधकका हृदय ही आकाश है । आकाशमें जब सूर्य उदित होते हैं तो प्रकाश फैल जाता है । अन्धकार समूह नष्ट हो जाता है । व्यभिचारी (मिश्रित) मत तो अन्ध-

कार वत छाकर रस मार्गको सूझनेही नहीं देंगे । अतः रसिक हृदयका यह सिद्धान्त सूर्य उनके रसमार्गमें अनन्यताका प्रकाश बिखेरकर व्यभिचारी मत रूपी अन्धकार पुञ्ज मिटा देंगे । रसिकोंको अपने इष्टमें पातिव्रत्य रूप अनन्यता निर्वाह आवश्यक है ।

❀ पुष्पिका ❀

सम्वत सर गिरि वसु आवनि, माघ शुल्क तिथ्यान्त ।
सियाराम शरन के, प्रेरित रच्यो सिद्धान्त ॥१५७॥

शब्दार्थः— सर=कामबाण पाँच होते हैं। गिरि=सात पर्वत प्रसिद्ध है । वसु=आठ । अवनि=पृथ्वी एक संख्या सूचिका होती है। तिथ्यान्त=पूर्णमासी ।

भावार्थः— सम्वतकी गणना प्राचीन परिपाटीसे ऐसे ही सांकेतिक शब्दोंमें तथा विलोम क्रमसे करते हैं । उस रीतिसे गिनने पर ग्रन्थ रचनाका विक्रमी सम्वत् पड़ता है १८७५ । माघ मासकी पूर्णिमाकी तिथिमें इसका समापन किया गया था । आपके किसी सियाराम शरण नामक कृपापात्रने सिद्धान्त विषयक ग्रन्थ लिखनेकी प्रार्थनाकी थी । उन्हींके बहाने आप रसिक जगत्के लिये यह अनमोल निधि रखगये है । श्रीरसिक प्रकाश भक्तमालके कवित्त ३२४, ३२५ पढ़िये :—

पिया मिलन कब होइ सुरतिया लागि रही।

निसिबासर मोहि नींद न आवै

पलपल कलप लही।

छिनछिन बीतत ज्यों विधिवासर

विरहकी ज्वाल दही।

रसिक राम सिय बिन देखे

दोउ नैनन चैन नहीं॥

चलु पियाके भवनवाँ

बड़ी भई अब देर री।

पियको भवनवाँ अवधपुर राजै

कनकभवन सुखसेर री।

छोटी बड़ी सों हिलमिल रहिये

ना करिये अनखेर री।

तबतो रसिकपियासों मिलिये

घन घमंडको घेर री॥